॥ ॐ नमः शिवाय ॥

श्रीसामवेदसंहिता

अर्थात्

श्रीसामामृतसिन्धुः

श्रीमन्निगमागमार्णवसेतुनिर्माता

श्रीसायणाचार्य-प्रणीतभाष्यच्छायानु

आर्यभाषा-पद्यात्मक अनुवाद का

पञ्चम और षष्ठ अध्याय ॥

जिसको—

अजमेर राजकीय पाठशाला के प्रधान संस्कृताध्यापक

कविरत्न त्रिपाठी शिवदत्त काव्यतीर्थ ने बनाया ।

और

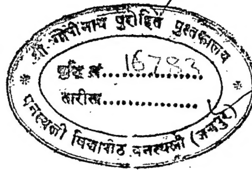
तदनुज साहित्यालङ्कार पण्डित रामदत्त त्रिपाठी ने उपयुक्त

टिप्पणी से विभूषित कर के प्रकाशित किया ॥

श्रीयुत बाबू मथुराप्रसाद शिवहरे प्रबन्धकर्त्ता के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित हुआ ॥

संवत् १९७६



अथ पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्ड आरभ्यते ॥

तत्र प्रथमाया अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ४६७ ॥

अथ द्वितीयायाः मधुच्छन्दा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोमधारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥ ४६८ ॥

अथ तृतीयाया भृगुर्वारुणिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥ ४६९ ॥

अथ चतुर्थ्याः अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

यस्ते मदो वरेण्य स्तेनापवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥ ४ ॥ ४७० ॥

हे सोम ! तेरे सुरस का प्राकट्य ऊपर को हुआ ।
श्रीयुक्त जो दिवलोक उसके मध्य स्थिति को पारहा ॥
पुनि शक्ति से सम्पन्न ऐसे सुख तथा अत्यन्न को ।
हम भूमि के वासी सफल भलिभाँति सेती पावते ॥ १ ॥ ४६७ ॥

हे सोमरस ! तुम इन्द्रनामक देव के पीने लिये ।
नाना प्रयोगों के किये उत्पत्ति को पाये हुए ॥
अत्यन्त स्वाद समेत परमानन्द को देती रहै ।
अस दिव्य गुणयुत धार सेती वृष्टि को कर दीजिये ॥ २ ॥ ४६८ ॥

हे सोम ! स्तोताभिलापों की वृष्टि को करते हुए ।
निज धार से श्री द्रोण घट के बीच में आजाइगे ॥
पुनि तुम्हें हम इन्द्रार्थ दें तब मरुन्मित्र सुरेश के ।
निज पराक्रम से सदैव धन धरके सुखप्रद हूजिये ॥ ३ ॥ ४६९ ॥

श्री सोम ! तेरा दिव्य रस सुरवृन्द के मनभावता ।
राक्षस तथा पापावली को नष्ट भ्रष्ट बनावता ॥
अत्यन्त स्तुति के योग्य और प्रमोद को उपजावता ।
ऐसा जु रस स्पृहणीय उसको कलश में बरसावना ॥ ४ ॥ ४७० ॥

अथ पंचम्यास्त्रितऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

तिस्रो वाच उदीरते गावोमिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥ ४७१

अथ षष्ठ्याः कश्यपऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधु मत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ ४७२

अथ सप्तम्याः जमदग्निर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥ ४७

अथाष्टम्याः दृढच्युत आगस्त्य ऋषिः। सोमो देवता गायत्री छन्द

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥ ४७

श्रीयुत ऋगादिक भेद सेती त्रिधा स्तुतिहिं उचारते ।
श्री दुग्धदात्री गवें दुहने के लिये रंभाति हैं ॥
श्री हरित रँग का सोमरस अव्यक्त ध्वनि करता हुआ ।
श्री द्रोणसंज्ञक मख कलश के बीच बहता जावता ॥ ५ ॥ ४७१

हे सोम ! तुम अत्यन्त मीठे स्वाद को रखते हुए ।
श्री पूज्य यज्ञस्थान में शोभित विराजन के लिये ॥
श्रीयुक्त इन्द्र जु देव उसकी प्रीति को पाने लिये ।
श्री द्रोणनामक मख-कलश तिस बीच आगम कीजिये ॥ ६ ॥ ४

श्री पर्वतों में प्रकट ऐसा सोम सुख उपजावने ।
भलिभाँति संपादित हुआ जल बीच वृद्धिहिं पात है ॥
ज्यों श्येन वन से आयके निज स्थान में स्थित होवता ।
त्यों सोम अपना स्थान श्रीयुत द्रोण घट तहँ ठैरता ॥ ७ ॥

श्री हरितवर्ण तथा अमंगल-नाशकारक देवता ।
बल वृद्धि को करता हुआ आनन्द को उपजावता ॥
इन्द्रादि देव-समूह अरु श्री मरुत आदिक देव हैं ।
ये पान तेरा करें इसलिये कलश में भरजाइये ॥ ८ ॥ ४७४

अथ नवम्याः काश्यपोऽसितऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः।

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्। मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥ ४७५॥

अथ दशम्या ऋष्यादयः पूर्ववत्।

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥ ४७६॥

इति प्रथमः खण्डः।

अथ द्वितीयः खण्डः।

—:o:—

तत्र प्रथमायाः श्यावाश्वऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः।

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्। सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ ४७७॥

यह सोमसंज्ञक रस अतीव विशुद्धि-संयुत पात्र में।
परिपूर्ण होता तथा श्रीगिरिपृष्ठ पै उत्पन्न है॥
विधिसहित सम्पादित हुआ स्तोतादि के समुदाय में।
सम्पूर्ण वाञ्छित सिद्धियों के वर्ग को देता रहै ॥ ९ ॥ ४७५ ॥

श्री सोमसंज्ञक दिव्य रस अतिबुद्धि को उपजावता।
अधिषवण के जो फलक तिन्ह के मध्य में स्थापित हुआ॥
श्रीयुत दिवाभिध लोक के प्यारे पथिक-समुदाय जे।
उनके सहित वह सोमरस भलि भाँति प्राप्त हुजात है ॥ १० ॥ ४७६॥

इति प्रथम खण्ड ॥

अथ द्वितीय खण्ड का आरम्भ ॥

आनन्द के दातार ऐसे सोमसंज्ञक सुरस हैं।
वे दिव्यगुणसम्पन्न उत्तम रीति से हो जात हैं॥
तब हव्य से संयुक्त हम सब जनों के शुभयाग में।
श्री अन्न अरु सत्कीर्तिसहित पात्रों विषे आजात हैं ॥ १ ॥ ४७७ ॥

अथ द्वितीयाया त्रितऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ २ ॥ ४७

अथ तृतीयायाः अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः

पवस्वेन्दो वृषासुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्या भृगुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥ ४८०

अथ पंचम्याः काश्यप ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छ

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥ ४

श्री बुद्धि के दातार ऐसे सोमरस जे वाजते ।
वे जलों की लहरें उन्हीं की तुल्यता को धारते ॥
जिस रीति से पशुवर्ग वन की ओर चल के आवते ।
उस भाँति से वे सोम-पात्रावली के बिच आवते ॥ २ ॥ ४

हे सोम ! तू सींचा हुआ सब सिद्धियों को देवता ।
अपनी विमल धारावली से पात्र बिच आजावता ।
श्री देश भर में हमें उत्तम कीर्त्तियुत कर देवता ।
सब शत्रुओं के वर्ग को विध्वस्त करके गेरता ॥ ३ ॥ ४

हे सोम ! तू निश्चय मनोरथ-सिद्धि को दिलवावता ।
अतएव हे पवमान ! सब कृत्यादि को लख लेवता ॥
श्रीयुक्त अपने तेज से भलि भाँति छवि को पावता ।
अस तुम्हें हम सब यज्ञ कार्यों के विषे बुलवावते ॥ ४ ॥

श्री चेतना-दातार देवसमूह का प्यारा बना ।
श्री सोम याज्ञिक स्तोत्र से पात्रों विषे भरजावता ॥
जैसे रथी निज अश्व को इक धार में कर देवता ।
वैसेहि श्रीयुत सोमरस निज पात्र को भरदेववा ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्या ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥ ४८२ ॥

अथ सप्तम्याः निध्रुविः काश्यपऋषिः सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमारोह धर्मणा ॥ ७ ॥ ४८३ ॥

अथाष्टम्या अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥ ४८४ ॥

अथ नवम्याः काश्यपोऽसित ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥ ४८५ ॥

बलवन्त वेगसमेत श्रीयुत सोमरस जो वाजते ।
श्री गवों की अभिलाष से श्री अश्व की रुचि राखते ॥
श्रीयुक्त पुत्र-समूह उनका लाभ हो इस आस से ।
श्री ऋत्विजों के वर्ग से अत्यन्त रचित हुजावते ॥ ६ ॥ ४८२ ॥

हे दिव्य सोम ! सुपात्र में तू धार से परिपूर्ण हो ।
आनन्दप्रद तेरा सुरस सुरनाथ को मिलजाइ हो ॥
श्री धारणा करने समर्थ स्वकीय रस के रूप से ।
श्री वायुनामक देव को भलि भाँति से मिल जाइ है ॥ ७ ॥ ४८३ ॥

श्री शुद्धि का दातार अब पवमान-संज्ञक सोम जो ।
उसने अतीव प्रशस्त श्री वैश्वानराभिध तेज को ॥
श्री युक्त दिवलोकाभिधानी उपरिवर्तित लोक के ।
आश्चर्यदाता वज्र के सम भली विधि प्रकटित किये ॥ ८ ॥ ४८४ ॥

श्री सोमवल्ली से निचुड़ते कान्ति को धरते हुए ।
अत्यन्त स्तोत्रस्वरूपिणी अब वाणि के उपयोग से ॥
श्री हर्ष के उपजान वारे सोम अपनी धार से ।
श्री सुरहितार्थ दशा पवित्र विशेष से चू जावते ॥ ९ ॥ ४८५ ॥

अथ दशम्या ऋषयादयः पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३२र २र ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
परिमासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधिश्रितः । कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १०॥४८६॥

इति पंचमः प्रपाठकः । द्वितीयखण्डश्च समाप्तः

अथ तृतीयः खण्डः ।



तत्र प्रथमाया अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १र ३र १ २ ३ १ २
उपोषु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥ ४८७ ॥

अथ द्वितीयायाः बृहन्मतिराङ्गिरस ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः

३ १ २ ३१२३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पुनानो अक्रमीदभि विश्वामृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥ ४८८ ॥

श्री बुद्धिवर्धक तथा सिन्धु-तरंग में आश्रित हुआ ।
अगणित जनों की स्पृहा के संयोग को रखता रहा ॥
श्रीयुक्त स्तुति-कर्त्तार नर को भली विधि से धारता ।
अस सोमनामक दिव्यरस पात्रावली बिच टपकता ॥ १० ॥ ४८६ ॥

द्वितीय खण्ड समाप्त ।

अथ तृतीय खण्ड का आरम्भ ॥

जो रीति से प्रकटा जलों से प्रेरणा पाया हुआ ।
रिपुवर्ग का नाशक गवों के घृतादिक से शुचि रहा ॥
उपरोक्त गुण सम्पन्न ऐसा सोमरस कहलात है ।
श्रीयुक्त सुर-समुदाय उसको भली विधि से पात हैं ॥ ११ ॥ ४८७ ॥

सम्पूर्ण का द्रष्टा पवित्रपना सदा देता रहै ।
अस सोम रिपु-समुदाय को आक्रान्तियुत कर देत है ॥
श्री बुद्धि का दातार ऐसा सोमनामक सुरस है ।
श्री याज्ञिकों के वृन्द शोभासहित उसको करत हैं ॥ २ ॥ ४८८ ॥

अथ तृतीयाया असितः काश्यपो जमदग्निर्वा ऋषिः। सोमो देवता।
गायत्री छन्दः।

३ २ ३१२ ३२उ ३ १२३१र २र २ ३१ २
आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः। इन्दुरिन्द्राय धीयते॥ ३ ॥ ४८९ ॥

अथ चतुर्थ्याः प्रभूवसुर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः।

१२३२ ३ १ २ २१२३क २र ३२ १२ ३ १ २
असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः। कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत्॥ ४ ॥ ३९० ॥

अथ पंचम्याः मेध्यातिथिर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः।

२उ ३ १ २१३ २ ३ २ ३१२ १२ ३ २उ ३२२
प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः। घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम्॥५॥४९१॥

अथ षष्ठ्या निध्रुविर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः।

३ १ २ ३ १२ २ १ २ ३२ ३१२ २र ३ १२
अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः। नुदस्वादेवयुं जनम्॥ ६ ॥ ४९२ ॥

श्री सोम संपादित कलश के मध्य में आता हुआ।
इस भाँति की सम्पत्तियों का सुवर्षण करता हुआ॥
यह सोमरस श्रीयुक्त इन्द्राभिध सुरेश्वर के लिये।
श्री याज्ञिकों से यज्ञ के बिच प्रतिष्ठापित होत हैं॥ ३ ॥ ४८९ ॥

जैसे तुरंगम सुरथ का रथ से छुड़ाया जावता।
तैसेहि मख में अधिषवण फल कों विषें निचुड़ा हुआ॥
श्री सोम पात्रों में धरा उस वेग को पा लेवता।
श्री यज्ञरूपी युद्ध में आक्रमण को करदेवता॥ ४ ॥ ४९० ॥

जो त्वरा को करते प्रकाश-समेत गति को धारते।
उरकदेतन धारि अँधेर अभिषव से अलग सरकावते॥
वह सोमरस श्री यज्ञ को ऐसे प्रवृत्त बनात हैं।
जैसे की गायें शीघ्रता से गोष्ठ के प्रति जात हैं॥ ५ ॥ ४९१ ॥

हे सोमरस! मद करत तू हिंसक रिपुन को मारता।
हम सबों को श्रीज्ञान देता पात्र बिच भर जावता।
इत्यादि गुणसम्पन्न तू सुरगण विरोधी वर्ग को॥
विध्वस्त करके हमारे मख सेति दूर हटाइयो॥ ४ ॥ ४९२ ॥

अथ सप्तम्या ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

१ २ २ ३ १२ ३ २ ३ २३१२ ३ १२ २ ३२
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥ ४९३ ॥

अथाऽष्टम्या अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

१ २ ३ २उ ३१२ ३ २३ १ २ १ १२ ३२३२
स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥ ८ ॥ ४९४ ॥

अथ नवम्या ऋष्यादय उक्तवत् ।

३ २ ३१२ २र ३ १ २ ३२३ २ ३ १२ ३ १२र
अया वीती परिस्रव यस्त इन्द्रो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥ ९ ॥ ४९५ ॥

अथ दशम्या उचथ्य ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

१२३१२ २र३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ २
परिद्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ ४९६ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

हे सोम ! मानव जाति के हित को निरन्तर आचरें ।
श्रीजलों के समुदाय को तुम प्रेरणा करते हुए ॥
जिस धार से श्रीयुत प्रभाकर देव को चमकावते ।
इस धार सेती यज्ञ की पात्रावली बिच आइये ॥ ७ ॥ ४९३ ॥
हे सोम ! जो अत्यन्त भारी जलों के समुदाय हैं ।
उनकी रुकावट करन वारा वृत्रनाम धराय है ॥
उसको विनाशित करन के लिय इन्द्र की रक्षा करो ।
वह तुम रसधारा-प्रवाहों से कलश-पूर्तिहिं आचरो ॥ ८ ॥ ४९४ ॥
हे सोम ! इस रस सेति श्रीयुत इन्द्र के भोजन लिये ।
श्री यज्ञवर्त्ती द्रोणघट तिस बीच में तुम टपकिये ॥
जो तुम्हारा रस रणों में शंबर कि नौ ऊपर नवै (९९) ।
उस नगरियों के वर्ग को विध्वस्त करके डारिया ॥ ९ ॥ ४९५ ॥
श्री दीप्तियुत औ दियेजाने वार धन बल अन्न को ।
वह सोमरस हम सबों को भलिभाँति से दे दीजियो ॥
हे सोमरस ! तू अभिषवण की क्रिया को पाता हुआ ।
श्री द्रोण घट के मध्य चारों ओर सेती बरसना ।। ॥ ४९६ ॥

तृतीय खण्ड समाप्त ।

अथ चतुर्थः खण्डः ॥

तत्र प्रथमायाः मेध्यातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ १र २र
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सᳬ सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ ४९७ ॥

द्वितीयाया भृगुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ २ ३ १ २
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ४९८ ॥

अथ तृतीयाया उचथ्य ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

१ २ ३ १ ३ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतᳬ सोमं पवित्र आनय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥ ४९९ ॥

अथ चतुर्थ्या अवत्सार ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

२३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ५०० ॥

अथ चतुर्थ खण्ड ॥

अभिमत फलों की वृष्टि करता हरे रँग को धारता ।
श्रीमहा-महिमा-युक्त मित्र समान हित उपजावता ॥
अस सुभगता-युत सोमरस अव्यक्त ध्वनि करता रहै ।
वह सोम रवि के साथ श्रीदिवलोक में चमकत रहै ॥ १ ॥ ४९७ ॥

हे सोम ! यष्टा वर्ग हम तुव दिव्य गुणयुत वीर्य जो ।
तिहिं यज्ञ के दिन आज अभिमुख होय कर आराधतो ॥
वह पराक्रम सुख देवता धन आदि प्राप्त करावता ।
रिपुवर्ग से त्रातार जिसको सभी का गण चाहता ॥ २ ॥ ४९८ ॥

अध्वर्यु ! शिल लोढ़ी तथा मूषल उँखल पाषाण से ।
विधि के सहित निकसा हुआ अस सोमनामक सुरस है ॥
उसको सुमख सम्बन्धवारे कलश में पहुंचाइये ।
औ इन्द्र के पीने लिये पावित्र्ययुक्त बनाइये ॥ ३ ॥ ४९९ ॥

श्री सोमरस की निचोड़ी हुइ ऐसि जो कोइ धार है ।
उसको समर्पत कोइ श्रीयुत इन्द्र को हर्षात है ॥
वह यज्ञकर्त्ता पुरुष पाप-समूह से तर जावता ।
औ ऊर्द्धवर्त्ती लोक तिन्ह को भली विधि से पावता ॥ ४ ॥ ५०० ॥

अथ पंचम्याः निध्रुविर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

आपवस्व सहस्त्रिणं रयिं सोम सुवीर्य्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥ ५ ॥ ५०१ ॥

अथ षष्ठ्या ऋष्यादिक मुक्तवत् ।

अनुप्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्तसूर्य्यम् ॥ ६ ॥ ५०२ ॥

अथ सप्तम्या भृगुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

अर्षासोम द्युमत्तमोभिद्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ ५०३ ॥

अथाऽष्टम्याः कश्यपऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

वृषा सोमद्युमां असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥ ५०४ ॥

हे सोम देव ! सहस्र-संख्या-युक्त जे पुरुषार्थ हैं ।
उनके सहित उत्तमोत्तम धन सामने बरसाइये ॥
औ हमारे जो वर्ग तिन्ह के विषे अन्नसमूह को ।
तुम कृपा का उपयोग करके भली विधि से स्थापियो ॥ ५ ॥ ५०१ ॥

श्रीपुरावन औ गमनशील जु सोम के समुदाय ने ।
श्रीयुक्त नूतन स्थान को आक्रमण से संयुत किये ॥
श्री दीप्ति के पाने लिये श्री सूर्य समता धारते ।
अस सोमनामक सुरस को भलि भाँति से प्रकटा दिये ॥ ६ ॥ ५०२ ॥

हे सोम तू अत्यन्त सुन्दर कान्ति को धरता हुआ ।
श्रीद्रोणघट के मध्य पुनि पुनि शब्द को करता हुआ ।
श्री यज्ञगृह वा वेदियों पै प्रथम ही स्थिति पावता ।
आगमन करता तथा वर्षण करत ही भर जावता ॥ ७ ॥ ५०३ ॥

हे सोम ! तू सम्पूर्ण कामों का बरसने वार है ।
हे दीप्तियुत ! श्रीदेव ! तू सब सिद्धि का दातार है ॥
श्री वृष्टि का व्रत धरणवारा वाञ्छितों को साधता ।
श्री सोम ! तू सुरनर-हितैषी कृत्य आदिहिं धारता ॥ ८ ॥ ५०४ ॥

अथ नवम्या ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

इन्दुः पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभिगा इहि ॥ ६ ॥ ५०५ ॥

अथ दशम्या असित ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

* पुनाना वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥ १० ॥ ५०६ ॥

अथैकादश्याः कविर्भार्गवो भारद्वाजो वा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छंदः ।

अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्द्धथाः । मन्दान इद्वृषायसे ॥ ११ ॥ ५०७ ॥

हे सोम ! ऋत्विग्वर्ग द्वारा भली विधि शोधे गये ।
हम सभी याज्ञिक-वृन्द के हित अन्न को देने लिये ॥
निजधार द्वारा पात्र के बिच आगमन को कीजिये ।
श्री दिव्य अन्न स्वरूप से गो आदि की सुधि लीजिये ॥ ९ ॥ ५०५ ॥

हे सोम ! तुम सम्पूर्ण वाञ्छित-सिद्धि को बरसात हो ।
श्रीदेवगण के प्रिय तथा हम से भी चाहे जात हो ॥
हम सभी याज्ञिक वृन्द की भलि भांति से रक्षा करो ।
औ ऊन निर्मित पात्र में सुख धार सेती प्राप्त हो ॥ १० ॥ ५०६ ॥

हे सोम ! यह अभिषवणरूपी दिव्य गुणयुत काम है ।
जिससे प्रपूजित होवते श्री देवहित बढ़जाइये ॥
पुनि यज्ञ के बिच बहुत ही सन्तुष्टि को पावे हुए ।
श्रीयुत वृषभ के तुल्य तुम अव्यक्त ध्वनि कर देवते ॥ ११ ॥ ५०७ ॥

अत्यन्त प्राचीनकाल में मनुष्यों को धातुनिर्मित पात्रों का सुभीता नहीं था । पहिले पाषाण के उलूखलाकृति पात्रों से काम चलाते थे, तथा भेड़की ऊन को मोटी बटकर उसी के नातणे इत्यादि बना कर सोमरस को छानते थे और पृथ्वी में खड्डा खोद कर मोटे ऊनी वस्त्र को बिछाकर ऊपर पत्ते इत्यादि से रन्ध्रों को ढक कर रस का संग्रह रखते थे ॥

अथ द्वादश्याः जमदग्निर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥ ५०८ ॥

अथ त्रयोदश्या अयास्य आङ्गिरसो वा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥ ५०९ ॥

अथ चतुर्दश्याः अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ।

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः गच्छन्निन्द्रस्य । निष्कृतम् ॥ १४ ॥ ५१० ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥

सब भांति से श्री ज्ञानमय श्री पात्र बिच स्थिति पारहा ।
श्री शुद्धियुत यह सोमजल संयोग से प्रकटित हुआ ॥
अत्यन्त गुण सम्पन्न अन्न समृद्धियों को देवता ।
सम्पूर्ण पुरुष-समूह से भलि भांति जाना जावता ॥ १२ ॥ ५०८ ॥

हे सोम ! गीला तू हमारे बहुत से धन के लिये ।
श्री द्रोणसंज्ञक कलश तिस के मध्य वह कर जावते ॥
इस समय में ऋषि तुम्हारी श्रीतरंगों को धारता ।
श्रीयुत सुरों के वृन्द तिन्ह को यजन करने जावता ॥ १३ ॥ ५०९ ॥

हे सोम ! हिंसकशत्रु अथवा ज्वरादिक को मारता ।
श्री शक्तियुत होकर कृपण हो उसे भी संहारता ॥
पुनि इन्द्र का श्री स्थान तिस को भली विधि पाता हुआ ।
श्री दिव्य गुणयुत धार उस सेती बरसता जावता ॥ १४ ॥ ५१० ॥

चतुर्थ खण्ड समाप्त ॥

अथ पंचमः खण्डः ॥

भरद्वाजः काश्यपोऽत्रिर्जमदग्निश्च गोतमः ।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च सर्वासामृषयो मताः ॥

तत्र सर्वासां पवमानो देवता । बृहती छन्दः ।

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥ ५११ ॥

अथ द्वितीया ।

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वाऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥ ५१२ ॥

अथ तृतीया ।

आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ ३ ॥ ५१३ ॥

अथ पंचम खण्ड का आरम्भ ।

हे सोम ! शोधक श्रीवसति वरि जलों को ढकता हुआ ।
श्री धार द्वारा द्रोण घट के बीच में तू जावता ॥
रमणीय धन दातार मख के स्थान को पाजात है ।
औ दीप्तियुत बहता सुरों के हेतु सुख पहुंचात है ॥ १ ॥ ५११ ॥
जो सोम श्री सुरवृन्द के लिय श्रेष्ठ हवि हो जात है ।
श्री नरहितैषी जो वसति वरि जलों के प्रति जात है ॥
जिस सोम को अध्वर्यु ने प्रस्तरों सेती काढिया ।
उस को इस स्थल से उपरि को जलों के विच सींचिये ॥ २ ॥ ५१२ ॥
सोम ! पापाणों सेती तू अभिषव किय जावत ।
रक्षक भेड़ कि ऊन तिसे व्यवधान बनावत ॥
अभिमुख हो श्रीद्रोण-कलश तिस के प्रति जावत ।
हरित सोम अधिषवण काष्ठ धृत कलशयुँ पावत ॥
जैसे नगरी में पुरुष निज प्रवेश कर देवता ।
त्यों घुसता तू काठ के पात्र विषें स्थिति लेवता ॥ ३ ॥ ५१३ ॥

अथ चतुर्थी ।

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छाकोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥ ५१४ ॥

अथ पंचमी ।

सोम उष्वाणः सोतृभिरधिष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरितायाति धारया मन्द्रयायाति धारया ॥ ५ ॥ ५१५ ॥

अथ षष्ठी ।

तवाहं सोम रारण सख्य इन्द्रो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो निचरन्ति मामव परिधीँ रतिताँ इहि ॥ ६ ॥ ५१६ ॥

अथ सप्तमी ।

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ ७ ॥ ५१७ ॥

हे सोम ! तू श्रीदेवगण के पान करने के लिये ।
सरिता सरिस श्रीवसतिवरि से वृद्धि पा भरजात है ॥

इस समय सुखप्रद जागता तू लता खंडज वारि से ।
श्रीमधुररसस्रावी कलश की ओर प्राप्त हुजात है ॥ ४ ॥ ५१४ ॥

उत्पादकों के वर्ग सेती भली विधि निचुड़ा हुआ ।
श्री सोम भेड़ कि ऊन से शुचि होय करके पहुंचता ॥

यह विदित है कि सुघोड़ि से भलि भाँति जैसे जात है ।
श्री हरित धारा औ सुखप्रद धार से पाजात है ॥ ५ ॥ ५१५ ॥

हे सोम ! तेरा प्रीति से संयुक्त शील स्वभाव है ।
उस के विषय में प्रति दिवस भलि भाँति मे रमता रहूं ॥

हे बभ्रु ! अगणित राक्षसों के वर्ग दुख पहुंचावते ।
उन सबों के समुदाय को तू दलित करके डाल दे ॥ ६ ॥ ५१६ ॥

श्री दिव्य अंगुलिवर्ग से हे सोम ! संपादित हुए ।
पावित्र्य पाकर कुंभ में अव्यक्त ध्वनि को प्रेरते ॥

हे सोम ! कंचन रतज सेती पीतवर्ण धरावते ।
अगणित जनों से चहे हमको बहुत वित्त दिलावते ॥ ७ ॥ ५१७ ॥

अथाष्टमी ।

३ १र २र ३२३ १२ ३ २ ३ १२
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
३१र २र ३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
समुद्रस्याधिविष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥ ५१८ ॥

अथ नवमी ।

३ १ २३ १२ ३२ ३ २ ३ १ २ ३२
पुनानः सोमजागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
२र २र ३१ २ ३१ २
त्वं विप्रो अभवोङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ॥ ९ ॥ ५१९ ॥

अथ दशमी ।

१ २ ३ २३ १ २ ३१ २ २३
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
३१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३१२
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥ ५२० ॥

अथैकादशी ।

१२ ३ १२ ३ १र २र ३ १ २
पवस्व वाजसातमोऽभिविश्वानि वार्या ।
१ २३१ २३१र २र ३१ २ ३२
त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मं देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ ११ ॥ ५२१ ॥

श्री गमनशील तथा मनों को बहुत प्यारे लागते ।
आनन्द देनेवार ऐसे रसों को टपकावते ॥
श्री सोम रस श्री द्रोणघट के उपरि सुख उपजावते ।
श्री हर्षदायी सुरस को सब ओर सेति निकासते ॥ ८ ॥ ५१८ ॥
हे सोम ! जागृतिशील, तर्पक शुद्धता को धारते ।
उरड़ी कि ऊन स विनिर्मित श्री पवित्रे में टपकते ॥
श्री श्रेष्ठतायुत आङ्गिरस ! ज्ञानी पितर नेता रहो ।
वे तुम हमारे मखहिं शुचि रस सेति सींचा चहात हो ॥ ९ ॥ ५१९ ॥
आनन्द का दातार श्रीयुत सोमरस सींचा हुआ ।
श्री मरुद्गणयुत इन्द्र के लिय पात्र में भर जावता ॥
पुनि विविध धारा सेति अव्य पवित्र से छनता रहै ।
उसको मनुज ऋत्विज भली विधि सेति शुद्ध बनात है ॥ १० ॥ ५२० ॥
हे सोम ! सब स्तोत्रावली के लक्ष्य को करते हुए ।
आधिक्य से अन्नादिदाता प्राप्त तुम होजाइये ॥
हे देव ! सुरगण हेतु सुखप्रद तृप्ति को दिलवावते ।
वैशिष्ट्य से पोषक सुमख में देवहित बरसाइये ॥ ११ ॥ ५२१ ॥

अथ द्वादशी ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २
पवमान असृक्षत पवित्रमति धारया ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २ १र ३ २ १ ३ २र
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभिप्रयांसि च ॥ १२ ॥ ५२२ ॥

इति पंचमः खण्डः ।

अथ षष्ठः खण्डः ।

—:o:—

तत्र प्रथमाया उशना ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २ ३ १र २र
प्र तु द्रव परि कोशं निषीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हिरशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ ५२३ ॥

अथ द्वितीयाया वृषगणो वासिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छंदः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ २ ॥ ५२४ ॥

श्री मरुद्गण से युक्त शिवप्रद इन्द्र को प्रिय लागने ।
श्री स्तुति तथान्नहिं लक्ष्य कर याजकहिं अन धन देवने ॥
श्री यज्ञ में गन्तार श्रीयुत सोम अपनी धार से ।
श्री पवित्र को लाँघि करके सुसंपादित होवते ॥ १२ ॥ ५२२ ॥

श्री पंचमाध्याय का पंचम खण्ड समाप्त ॥

अथ षष्ठ खण्ड ।

हे सोम ! झटपट आय के श्री द्रोणघट में बैठिये ।
श्री ऋत्विजों से शुद्ध यष्टा हेतु अन्नहिं दीजिये ॥
बलवान घोड़े के सरिस तुझ को पुनीत बनावते ।
अध्वर्यु अंगुलि से भली विधि यज्ञ में पहुंचावते ॥ १ ॥ ५२३ ॥

उशना सरिस स्तुति को प्रशंसक भलीभाँति उचारता ।
इन्द्रादि सुर अवतार के गुण अधिकता से गावता ॥
श्री विविध-कर्मा, दिव्यरूप, विशुद्धि को उपजावता ।
अस सुदिन जनमा सोम ध्वनिकर पात्र में आजावता ॥ २ ॥ ५२४ ॥

अथ तृतीयायाः पराशर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

तिस्रो वाच ईरयति प्रवह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥ ५२५ ॥

अथ चतुर्थ्या वसिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥ ५२६ ॥

अथ पंचम्याः प्रतर्दन ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥ ५२७ ॥

यष्टा ऋग्यजुसाम तीन वाणी उच्चारत ।
श्री मखधरणी महासोम की वाणि सुनावत ॥
गायें जिस विधि अधिप वृषभ के निकट सिधावत ।
तिस विधि पूछत तथा अनेकन इच्छा राखत ॥
स्तोता के समुदाय जे यज्ञारंभ हुजावते ।
श्रीयुत सोम समीप में स्तोत्र गानहित जावते ॥ ३ ॥ ५२५ ॥

इस सोमप्रेरक स्वर्ण से पावित्र्य को पाता हुआ ।
श्री दिव्य सोम स्वकीय रस को देवगण सँग जोड़ता ॥
पुनि प्रकट सोम सशब्द पवित्रे लेति पात्र में आवता ।
ज्यों देवभक्त सखी स पशु क्रतुशाल में आजावता ॥ ४ ॥ ५२६ ॥

श्री सोम बुद्धि बढ़ावता दिवलोक को प्रकटावता ।
श्री धरणि का पोषक तथाग्निहिं तृप्ति को दिलवावता ॥
सूर्य का तर्पक तथैव सुरेश को सुख देवता ।
औ विष्णु को सुखदाइ अस रस पात्र के बिच आवता ॥ ५ ॥ ५२७ ॥

अथ षष्ठ्या वसिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वनावसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ ६ ॥ ५२८ ॥

अथ सप्तम्याः पराशर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥ ५२६

अथाऽष्टम्या प्रस्कण्वऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

कनिक्रन्ति हरिरासृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥ ८ ॥ ५३० ॥

श्री तीन सवनों वाळ सुखप्रद अन्न को दिलवावत है ।
अत्युच्च ध्वनिकर्त्तार सोम कि स्तोत्रगण रुचि धारते ॥
श्री जलों को छाता तथा श्री सलिल सोम बहावता ।
श्री वरुण सम रत्नप्रदाता मखिहिं वित्त दिलावता ॥ ६ ॥ ५२८ ॥

श्री जलों का वर्षक मखादिक कृत्य को निर्वाहता ।
श्री सिद्धि का दातार ऐसा सोम अभिषव पावता ।
विस्तीर्ण जळ के धरण वाले अन्तरिक्ष सुलोक में ।
श्री प्रजा को उत्पन्न करता सबहिं लँघत जात है ॥ ७ ॥ ५२९ ॥

सब ओर से आकृष्ट हरित जु सोम पुनि पुनि रव करै ।
श्री शुद्ध वांछा योग्य घट के बीच स्थित हो ध्वनि धरै ।
श्री ऋत्विजों से दबाया गोदुग्ध आदिहिं ढांकता ।
निज स्वरूपहिं प्रद में करै तिहिं स्तुति हविन से गावता ॥ ८ ॥ ५३० ॥

अथ नवम्या उशना ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ९ ॥ ५३१ ॥

अथ दशम्याः प्रतर्दन ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सरः इन्द्रपानः ॥ १० ॥ ५३२ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अथ सप्तमः खण्डः ॥

——:o:——

तत्र प्रथमायाः प्रतर्दन ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥ ५३३ ॥

हे इन्द्र ! फलदातार यह श्री सोमरस तेरे लिये ।
माधुर्ययुत वर्षक पवित्रे सेति टपकत जात है ॥
वह सहस्रों को देत शत को देत अतिधन देवता ।
श्री वही सोम पुराण यज्ञ में स्थान निज करता हुआ ॥ ९ ॥ ५३१ ॥
हे सोम ! मीठा तू वसतिवरि जलों को ढकता हुआ ।
अत्युच ऊनी पवित्रे के मध्य से बह जावना ॥
पुनि अतिमुखद इन्द्रार्थ पीने योग्य रस को देवता ।
श्री जल सहित श्री द्रोणघट में प्रकट होता जावता ॥ १० ॥ ५३२ ॥

इति षष्ठ खण्ड ।

अथ सप्तम खण्ड का आरम्भ ॥

श्री सेनानी शौर्ययुक्त श्रीसोमनागरत ।
यजमानों की गऊ आदि पशु की रुचि राखत ॥
रथावली के अग्र भली विधि रण में जावत ।
इस श्री सोम कि चमू बहुत संतुष्टि धरावत ॥
श्री यष्टार्थ सुरेशहित आवाहन सुखयुत करै ।
शीघ्र बुलावत वसन सम छादक दुग्धहिं लेत है ॥ १ ॥ ५३३ ॥

अथ द्वितीयायाः पराशर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २३ २ ३ २ ३ १२ २२
प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
१२ ३ १२ ३ १२ १ २ ३ २ ३ १२ ३२
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ २ ॥ ५३४ ॥

अथ तृतीयाया इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

१ २ ३उ २र ३१र २र ३१र २र
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
३१ २ ३२ ३ २३२ ३१ २ ३१ २ ३१ २र
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥ ५३५ ॥

अथ चतुर्थ्या वसिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

१ २ ३ १ २ ३१र २र ३ २ ३१र २र ३ १ २
प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥ ५३६ ॥

तेरी मीठी धारायें तब छोड़ीं जावत ।
जब तू बसती वरी जलों में शुचि होजावत ॥
ऊनि नातणे से छन कर पात्रों बिच जावत ।
सोम ! गऊ के पयहिं लक्ष्य करि चरित हुजावत ॥
पुनि सुपिद्ध होता हुआ तू प्रशस्य स्तुतिपुंज से ।
श्रीयुत भास्कर देव को भालि विधि पूरण करत है ॥ २ ॥ ५३४ ॥

स्तोता लोगों ! भली भाँति सोम कि स्तुति गाइय ।
हम सब तो श्री देववृन्द का करते अर्चन ॥
अति धन औ अभिपत्र निमित्त श्री सोमहिं प्रेरिय ।
पुनि रस ऊनि पवित्र सेति छन करके बरसिय ॥
श्रीयुत सोमाभिध सुरस दीप्तियुक्त होता हुआ ।
अभिमुख हो श्री द्रोणघट तिस के बिच स्थित होवना ॥ ३ ॥५३५॥

याजक प्रेरित तथा धरणि अरु श्री आकाशहिं ।
श्रीयुत वर्षण तथा हवन द्वारा प्रकटावत ॥
अन्न-प्रदाता और आयुधों के समुदायन ।
उत्तमरीति प्रयोग केति अतितीक्ष्ण बनावत ॥
विविध धनों के वर्ग को हम सब को देने लिये ।
हाथों में धरता हुआ सम्मुख आगम करत है ॥ ४ ॥ ५३६ ॥

अथ पञ्चम्याः मृडीको वासिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ ५ ॥ ५३७ ॥

अथ षष्ठ्याः नोधा ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥ ५३८ ॥

अथ सप्तम्याः काण्वो घौर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥ ५३९ ॥

वाञ्छित स्तोता की सुवाणि जिसको शुभ भावत ।
मख में स्तुति के योग्य सवन आगे सिधाते पावन ॥
धार यह स्तोता कि भारती सोम मनावत ।
पुनि उत्तम सुरवृन्द हर्ष को पूर्ण जनावत ॥
पालक घट में ठहरती इस सोमहिं चहती हुई ।
श्री गायें निज दुग्ध से मिला देन को आवतीं ॥ ५ ॥ ५३७ ॥
एक साथ ही सींचत नाना काम बनावत ।
इत उत अङ्गुलि चलतीं सोम को शुद्ध करावत ॥
वे दश अँगुलियँ देववृन्द द्वारा जो वांछित ।
ऐसा जो श्री सोम सुरस उसको प्रेरत रहँ ॥
पुनि श्री सोम हरा रवि कि दिशि परितः चलता रहे ।
गमनशील घोटक सरिस सोम कलश में जात है ॥ ६ ॥ ५३८ ॥
जब इस रस के विषय अश्व के अलंकार सम ।
ज्यों रवि में किरणालि तथा अंगुलिगण स्पर्द्धत ॥
तदनन्तर वह सोम वसतिवरि जल को ढांकत ।
स्तोताओं को चहत द्रोणघट के बिच आवत ॥
जैसे पशु की वृद्धि-हित रक्षणीय स्थल गोष्ठ है ।
तस में श्रीगोपाल तस सोम तहाँ पै जात है ॥ ७ ॥ ५३९ ॥

अथाष्टम्या मन्युर्वासिष्ठऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥ ५४० ॥

अथ नवम्याः कुत्सऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥ ५४१ ॥

अथ दशम्याः पराशर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

३ १ २ २ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २ २ ३ २
महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥ ५४२ ॥

क्षरणशील बलशालि निम्नगामी श्रीरसगण ।
इन्द्र-हेतु पुरुषार्थ-दाइ रस को प्रेरत रह ॥
यष्टा को धन देत तथा श्री बल का अधिपति ।
ऐसा सोम सुरेश देव को हर्ष देन हित ॥
पात्रों बिच टपकत रहत असुरों को संहारता ।
और चहूं दिशि रिपुन को अति बाधा पहुंचावता ॥ ८ ॥ ५४० ॥

श्रीसोम ! इस धारा सहित इन धनों को बरसाइयो ।
हे इन्द्र ! तू महामान्य बसती वरि कलश बिच जाइयो ॥
मारुत सरिस जिहिं सर्वमूला दित्य ने वेगहिं धरा ।
औ सर्वज्ञाता इन्द्र भी जिस सोम को पाजावना ॥ ९ ॥ ५४१ ॥

श्री महासोम-विशिष्ट उस सत्कर्म को करता रहा ।
जो जलों का गर्भस्वरूप यहै सुरों को सेरहा ॥
पवमान श्रीसुरराज में पुरुषार्थ को धरता रहा ।
अरु सोम ने श्री सूर्य में द्युतिपुंज को प्रकटित किया ॥ १० ॥ ५४२ ॥

अथैकादश्या: कश्यपऋषि: । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्द: ।

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।

दशस्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥ ५४३ ॥

अथ द्वादश्या: प्रस्कण्व ऋषि: । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्द: ।

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणा: प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।

नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥ ५४४ ॥

इति सप्तम: खण्ड: ।

अथाष्टम: खण्ड: ॥

तत्र प्रथमाया: श्यावाश्विर्ऋषि: । पवमानो देवता । अनुष्टुप् छन्द: ।

पुरोजिती वो अन्धस: सुताय मादयित्नवे ।

अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥ ५४५ ॥

श्री सुरचित्ताकर्षक, अरु सुखिया भलि विधि स्तुत ।
ध्वनि करता श्री सोम यज्ञ में स्तोत्रवर्ग सँग ॥
जैसे रण में घोड़े को संसृष्ट बनावत ।
वैसे उत्तम रीति सेति संयुत हो जावत ॥
मख-गृह विच दश अँगुलियें सुखद सोम को पात्र में ।
ऊंच स्थान ऊनी पवित्र से सम्यक् प्रेरतीं ॥ ११ ॥ ५४३ ॥
जैसे जलों की तरंगें अति त्वरा को धारण करें ।
त्यों देवपूजक यज्ञकर्त्ता सोम प्रति स्तुति प्रेरते ॥
स्तुतियाँ करति सत्कार वांछित उस सुरस ढिंग जाति हैं ।
संयुक्त हो उस में स्वकीय प्रवेश को तहँ पाति हैं ॥ १२ ॥ ५४४ ॥

पंचमाध्याय का सप्तम खण्ड समाप्त ॥

अष्टम खण्ड का आरम्भ ॥

हे मित्र स्तोताओं ! तुम्हारे निकट जिन्ह के जय रहे ।
अस हर्षप्रद औ प्रकट हुअ श्री सोमनामक सुरस है ॥
उस दिव्य रस के लिये लम्बी जीभ को जो धारते ।
अस कुक्कुरादिक वा असुरगण को अलग हटवाइये ॥ १ ॥ ५४५ ॥

अथ द्वितीयाया ययातिर्नाहुषऋषिः। पवमानो देवता। अनुष्टुप् छन्दः।

३ २ ३२ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥ ५४६ ॥

अथ तृतीयाया ऋष्यादयः पूर्ववत्।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ३ ॥ ५४७ ॥

अथ चतुर्थ्याः मनुः सांवरणऋषिः। पवमानो देवता। अनुष्टुप् छन्दः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवो ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥ ५४८ ॥

अथ पञ्चम्या ऋजिश्वाम्बरीषौ ऋषी। पवमानो देवता। अनुष्टुप् छन्दः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ५ ॥ ५४९ ॥

श्री सर्वव्यापक भेव्य धन की प्राप्ति का कारण यहै।
श्री पवित्रे से शुद्ध सोम सुकुंभ के पिच जात है ॥
श्री विश्ववर्त्ती प्राणियों की पालना करता हुआ।
श्री धरणि और अकाश को निज तेज से चमकावता ॥ २ ॥ ५४६ ॥

अत्यन्त ही माधुर्य-युत आनन्द को उपजावते।
अस प्रकट सोम दशा पवित्र विशेष पै स्थिति पावते ॥
इन्द्रार्थ पात्रों के विषें अतिक्षरण को पाते हुए।
सोमों! तुम्हारे दिव्य रस इन्द्रादि को मिलजाइ हैं ॥ ३ ॥ ॥ ५४७ ॥

श्री दिव्यगुण-सम्पन्न पथ के निकट में लेजावने।
श्री देवगण के मित्र उत्तम रीति से शोधे हुए ॥
निर्दोष श्रेष्ठ प्रकार सेती ध्यान को करवावते।
श्री स्वर्गप्रापक दीप्त सोम हमार हित को आवते ॥ ४ ॥ ५४८ ॥

श्री दीप्ति-संयुत सोम! शतशः जनों के स्पृहणीय हो।
श्री सहस्रों को पालने अत्यन्त अन्न यशवन्त हो।
अत्यन्त भास्वर तथा श्री बलदाइ सुत औ वित्त जो।
उसको हमारे वृन्दहित भलि भाँति प्राप्त कराइयो ॥ ५ ॥ ५४९ ॥

अथ षष्ठ्या अग्नसूनूकाश्यपौ ऋषी। पवमानो देवता। अनुष्टुप् छन्दः।

३ १ २ ३१२ ३१२ २२ ३ १ २
अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २उ ३ १२ २२ ३१ २ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥ ५५० ॥

अथ सप्तम्या ऋषिदेवते प्रोक्ते। बृहती छंदः।

१ २३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ २२ ३ १ २
शुक्रा वियन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥ ५५१ ॥

अथाष्टम्या ऋजिश्वाम्बरीषावृषी। पवमानो देवता। अनुष्टुप् छंदः॥

२ ३ १ २ ३१२ २२ ३ १ २ ३ १ २
परित्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३१२ २२
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥ ५५२ ॥

ज्यों वत्समाता गवें पहिली आयु में प्रकटे हुए।
अरु बाछड़े को प्रेमयुत व्यवहार से चाटति रहें॥
त्यों द्रोह सेति विहीन वसतीवरी नामक नीर जे।
वे इन्द्रप्रिय कमनीय सोमहिं भली विधि मिलजावते॥ ६ ॥ ५५० ॥

\+ सम्पूर्ण से स्पृहणीय रिपुहन्तार सोमहिं पावने।
पुरुषार्थ-द्योतक श्रेष्ठ धनु पै प्रत्यंचा चढ़वावते॥
विद्वज्जनों के सामने अध्वर्यु सत्कृति चाहते।
श्री धवल पय को सबल रूपहिं शोधने ढक देवते॥ ७ ॥ ५५१ ॥

सब की स्पृहा के योग्य हरित सुबभ्रु वर्ण धरात है।
उस सोम को ऊनी पवित्रे सेति शुद्ध बनात हैं॥
जो सोम सब इन्द्रादि नाना देव के ही वर्ग को।
आनन्ददाई सुरस के सँग प्राप्त हो तो जावतो॥ ८ ॥ ५५२ ॥

\+ तात्पर्य यह है कि यह एक प्रकार से सोम की धारा छोड़ने के लिये फैलाये हुए पवित्रे का वर्णन है।

अथ नवम्याः प्रजापतिर्ऋषिः । पवमानो देवता । अनुष्टुप् छंदः ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
प्रसुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसं हतामखं न भृगवः ॥ ९ ॥ ५५३ ॥

इति पंचमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥

अथ नवमः खण्डः ॥

तत्र प्रथमायाः कविर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छंदः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
अभिप्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्द्धते ।
१ २र ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ५५४ ॥

अथ द्वितीयाया ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्रस्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥ २ ॥ ५५५ ॥

श्री शुद्ध गुणयुत सोम के विख्यातियुत उस वाक्य को ।
सत्कर्म-लोपक होय वह न कदापि सुनने पाइयो ॥
स्तोताजनों ! ज्यों दक्षिणा से हीन ऐसे याग को ।
भृगुगणों ने सरका दिया त्यों कूकरे को ताड़ियो ॥ ९ ॥ ५५३ ॥

इति अष्टम खण्ड ॥

अथ नवम खण्ड का आरम्भ ।

भोजनार्ह हितकारि जगत्पालक जल-वर्गहिं ।
श्रीयुत सोम समस्त दिशाओं से मिल जाइय ॥
जिन नीरों में महा सोम यह अति बढ़ जावत ।
पुनि वह सोम महत्वयुक्त महिमा को पावत ॥
श्रेष्ठ सूर्य के सर्वतोगमनकारि रथ के उपरि ।
सबका द्रष्टा होय के आरोहण करता रहत ॥ १ ॥ ५५४ ॥
श्री प्रेरणा बिन हरित उत्तम रीति से शोधे हुए ।
अब सोम हमरे अमरगणयुत मखों के बिच आइ हैं ॥
पुनि कृपण शत्रु हमार अन्न कि रुचि रखत भूखों मरें ।
श्री देवविषयक स्तोत्र हमरे श्री सुरों को प्राप्त हैं ॥ २ ॥ ५५५ ॥

अथ तृतीयाया ऋष्यादय उक्तवत् ॥

एष प्रकोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥ ५५६ ॥

अथ चतुर्थ्या ऋषिगणऋषिः । पवमानो देवता । जगतीछंदः ॥

सो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्रमिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥ ४ ॥ ५५७ ॥

अथ पंचम्याः कविर्भार्गवऋषिः । पवमानो देवता । जगती छंदः ॥

धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ ५ ॥ ५५८ ॥

श्री सुरेन्द्र का वज्र रूप वपा से अतिशुचि ।
यहै मधुरता-युक्त सोम श्री द्रोण कलस बिच ॥
छखने में नहिं आय अपा अव्यक्त शब्द तिहिं ।
श्रीयुत मख के कृत्य होत रहैं करत रहत तहँ ॥
सत्यफला श्री सुखद फल जल देती ध्वनि को करत ।
सोम-धार पय देवनी धेनु तुल्य मिलती रहत ॥ ३ ॥ ५५६ ॥

श्री सोम सुरपति शुभोदर में अधिकता से जावता ।
श्री सखा (सोम) मित्रोदर निगीर्ण तिसे न दुख पहुंचावता ॥
ज्यों तरुण तरुणी से मिलै त्यों वसतिवरि से यह मिलै ।
वह सोम शतरन्ध्री पवित्रे मार्ग से घट में धसै ॥ ४ ॥ ५५७ ॥

श्री धारक, शुद्धर्थई सुरस सुरगण बलदायक ।
ऋत्विग्जन का पूज्य हरित रँग सोम धरावत ॥
अन्तरिक्ष-स्थित दशा पवित्रे से शुचि होवत ।
आकर द्रुग सब प्राणिन से प्रकटित होजावत ।
जैसे घोटक यत्न बिन यात्रा को करता रहै ।
वैसे वेगों को वसतिवरि-प्रवाह में करत है ॥ ५ ॥ ५५८ ॥

अथ षष्ठ्याः कविर्ऋषिः पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषिभिः ॥६॥५५९॥

अथ सप्तम्या रेणुर्भार्गवऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्द्धत ॥ ७ ॥ ५६० ॥

अथाष्टम्या वेनो भार्गवऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परिस्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ ८ ॥ ५६१ ॥

वाञ्छित-वर्षक अतिद्रष्टा दिन और उषा का ।
श्री द्युलोक आदित्य देव का उन्नतिदाता ॥
ऐसा वह श्रीसोम भली विधि सिद्ध होवता ।
जलवर्गों से पूर्ण सोम स्तुतियों को पाता ॥
श्री सुरेश के हृदय में निज प्रवेश चहता हुआ ।
कलशों के प्रति धार से घुसता ध्वनि करता रहा ॥ ६ ॥ ५५९ ॥

श्रेष्ठ यज्ञ में स्थित ऐसे इस सोम सुरस हित ।
इक्किस गायें सत्य दुग्ध पात्रों बिच पूरति ॥
बारह मास तथैव पाँच ऋतु तीन लोक रवि ।
ऐसे मिल इक्कीस धेनुओं में पय देवत ॥
इस प्रकार वह दुग्ध औ सोम मखों से बढ़त रह ।
तब वसतीवरि चार जल शोधन सुखरूपहिं करत ॥ ७ ॥ ५६० ॥

हे सोम ! तू निष्पन्न इन्द्र-निमित्त रस भल छोड़ियो ।
औ रोग राक्षस के सहित अति दूर पै हो जाइयो ॥
तुव सुरस के निज अंश कोपी मदसहित नहिं होइ हों ।
सत्यानृती (पापा) तुव रस मखों में हमारे लिए धनिक हों ॥८॥५६१॥

अथ नवम्या भरद्वाजो वसुर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ।

१ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ १२३ ३ २ ३ १र २र
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
३ १उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥ ५६२ ॥

अथ दशम्याः वत्सप्रीर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगतीछन्दः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३ २उ ३ १ २
प्रदेवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बर्हिषदो वचनवन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १० ॥ ५६३ ॥

अथैकादश्या आत्रिर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सिन्धोरुऽच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ ११ ॥ ५६४ ॥

कान्तियुक्त श्री सर्व सिद्धियों को बरसावत ।
पापहारि वा हरित सोम-संपादित होवत ॥
श्री नरपति सम दर्शनीय जल और लक्ष्य करि ।
निज रस देते समय शब्द अव्यक्त करत रह ॥
पुनि विशुद्ध भेड़ी कि श्री ऊनि पवित्रे से छनत ।
श्येन सरिस निज का सदन जलमय तहँ चलि जात है ॥ ९ ॥ ५६२ ॥

श्री मधुर सोम सुरेश प्रति पात्रावली विच आवते ।
ज्यों सदुग्धा गायें स्ववत्सों हेतु पय टपकाति हैं ॥
औ यज्ञ में स्थित रँभाती गायें सपय निज गादि से ।
चहुँ ओर स्रवत सुदुग्ध सोमहिं इन्द्रहित धरती रहें ॥ १० ॥ ५६३ ॥

ऋत्विज सोमहिं गायों के पय से मिलवावत ।
विधिद्वारा मिलवात भली विधि सेवी योजत ॥
श्रीसुरवलप्रद सोम सुरस का स्वाद लिवावत ।
अरु श्रीगोघृत से उसको मिलवात रीतियुत ॥
उस सोमहिं जल का अधार उच्चदेश तहँ जावते ।
सिंचक स्वर्ण विशुद्ध कर तिहिं दर्शकपन से पावते ॥ ११ ॥ ५६४ ॥

अथद्वादश्याः पवित्रऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
१ २ ३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २ ३ १र २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सन्तदाशत ॥ १२ ॥ ५६५ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ दशमः खण्डः ॥

तत्र प्रथमाया अग्निश्चाक्षुषऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ।

२ ३१ २ ३ २ ३१र २र ३ १ २
इन्द्रमच्छसुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥ ५६६ ॥

अथ द्वितीयायाश्चक्षुर्मानवऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २
प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ।
३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्युमन्तं शुष्ममाभर स्वर्विदम् ॥ २ ॥ ५६७ ॥

मंत्रराज श्री सोम ! अंग तुव उज्जल विस्तृत ।
शक्तिवन्त तू पीय तिन्होंके अँग को पावत ॥
चहुं दिशि तुव उस शुचि पवित्र से जिसका संभव ।
पयोव्रतादिक सेति जासु नहिं हुआ तप्ततनु ॥
अस परिपाकविहीन नहिं व्याप्तियुक्त होजात है ।
पक हि मखनिर्वाह करि उस पवित्र में व्यापवे ॥ १२ ॥ ५६५ ॥

इति नवम खण्ड समाप्त ।

अथ दशम खण्ड का आरम्भ ।

श्री शीघ्रता से बननवारे पात्र बिच टपकत रहे ।
सर्वज्ञ श्रीयुत हरित रँग सम्पन्न संपादित हुए ॥
उपरोक्त गुण संयुक्त ऐसे सोमसंज्ञक सुरस हैं ।
श्रीकामवर्षक इन्द्रनामक देव को मिलजाइ हैं ॥ १ ॥ ५६६ ॥
हे सोम ! जागृतिशील तू पात्रावली बिच प्राप्त हो ।
हे सोम ! इन्द्र निमित्त चहुं दिशि पात्र मांहीं बरसियो ॥
श्रीदीप्ति से सम्पन्न श्रीयुत स्वर्ग प्राप्त करावने ।
रिपुवर्ग के नाशक बलों को भली भांति दिलाइये ॥ २ ॥ ५६७ ॥

अथ तृतीयायाः पर्वतनारदावृषी । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ।

सखाय आनिषीदत पुनानाय प्रगायत ।
शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रिये ॥ ३ ॥ ५६८ ॥

अथ चतुर्थ्या ऋष्यादय उक्तवत् ।

तं वः सखायो मदाय पुनानमभिगायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥ ४ ॥ ५६९ ॥

अथ पंचम्याश्छित ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक् छन्दः ।

प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥ ५७० ॥

अथ षष्ठ्या मनुर्ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक् छन्दः ।

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥ ५७१ ॥

हे मित्र स्तोताजनों ! स्तुति को करन आय विराजिये ।
श्रीशुद्धियुत सोमार्थ श्री-सम्पन्न साम उचारिये ।
जैसे पिता निज पुत्र को भूषादि से भूषित करै ॥
तैसे इसे (सोम) शोभार्थ उत्तम हव्य से शोभित करें ॥ ३ ॥ ५६८ ॥

हे मित्र ऋत्विजजनों ! तुम श्री सुरों को सुख देवने ।
भलि भांति से सम्पन्न उस श्री सोम की स्तुति गाइये ॥
श्री बालकों के तुल्य नाना हव्य के समुदाय से ।
औ विविध श्रीस्तुतिवर्ग द्वारा स्वादयुक्त बनाइये ॥ ४ ॥ ५६९ ॥

श्रीयज्ञपूरक पूज्य जल-समुदाय का शिशु तुल्य है ।
अस सोम मख के प्रकाशक निज सुरस को प्रेरित करै ॥
सम्पूर्ण हव्य-समूह तिन्ह में भली विधि से व्यापता ।
दिवलोक औ भूलोक दोनों स्थान पै स्थिति पावता ॥ ५ ॥ ५७० ॥

हे सोम ! श्री सुरवृन्द के तुम भोग में आने लिये ।
बलयुक्त धारा सेति पात्रों बीच पूरित हूजिये ॥
श्री सोम ! अत्यानन्ददायक रसों को बरसावता ।
श्रीद्रोण घट जो हमारा है तहां स्थिति को पावता ॥ ६ ॥ ५७१ ॥

अथ सप्तम्या अग्निर्ऋषिः। पवमानो देवता। उष्णिक् छन्दः।

१२ ३२ ३२र ३ २३ १ २
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं विधावति।
१२ ३१र २र ४३ १ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥ ५७२ ॥

अथाष्टम्या द्वितऋषिः। पवमानो देवता। उष्णिक् छन्दः।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते।
३१र २र ३१ २ ३ १ २
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥ ५७३ ॥

अथ नवम्याः पर्वतनारदावृषी। पवमानो देवता। उष्णिक् छन्दः।

१२ ३ १ २ ३१ २
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव।
१ २ ३ २ ३२ ३ १२
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥ ५७४ ॥

अथ दशम्या ऋष्यादयः पूर्ववत्।

३ १ २ ३१२३१र २र
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत।
१ २३ १ २३ १ २
गोभिष्टे वर्णमभिवासयामसि ॥ १० ॥ ५७५ ॥

श्रीशुद्धियुत स्तुति के अगाड़ी शब्द को करता हुआ।
भलिभांति श्रीयुत सोमरस उत्पत्ति को पाता हुआ॥
अस सुरस धारा सेति ऊनी पवित्रे से निकलता।
नाना प्रकारों से गमन करता हुआ वह जावता ॥ ७ ॥ ५७२ ॥

स्तोता कहे हे जीव! श्रीयुत पवित्रे से शुचि हुआ।
श्रीकर्मधाता सोमके लिय गुणस्तुति को बोलना॥
औ स्तोत्र से संतुष्ट के लिय अधिक स्तोत्र बखानना।
जिस रीति से सेवापरायण को सुवेतन देवते ॥ ८ ॥ ५७३ ॥

श्री पराक्रम-सम्पन्न सोम! सुरीति से प्रकटा हुआ।
गायों सहित घोड़ों सहित धन हम सबों को देवना॥
पुनि शुद्धि से संयुक्त और प्रदीप्ति को धरता रहे।
अस सुरस को गोरस विषें भलि भांति मैं पावता ॥ ९ ॥ ५७४ ॥

हे सोम धनदाता तुझे धन आदि हमको देवने।
हम सबों की श्री बाणियें सब भांति तुव यश गाति हैं॥
औ सभी याज्ञिक लोग हम तुव रसहिं गोदुग्धादि से।
सब ओर से वा भली विधि रक्षित तथाऽऽच्छादित करें ॥१०॥ ५७५॥

अथैकादश्या अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक् छन्दः ।

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥ ५७६ ॥

अथ द्वादश्याः त्रित ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक् छन्दः

परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत ॥ १२ ॥ ५७७ ॥

इति दशमः खण्डः ॥ इत्यौष्णिहम् ॥

अथैकादशः खण्डः ।

—:o:—

तत्र प्रथमायाः गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप् छन्दः

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥ ५७८ ॥

स्पृहणीय हरित सुरंग सोम अतीव सुन्दर वेग से ।
तिरछे पवित्रों मध्य में से निकल करके जात है ॥
हे सोम ! तुम स्तुति करन वाले याज्ञिकों के वृन्द को ।
श्री वीर पुत्र समेत उत्तम कीर्त्ति सब विधि दीजियो ॥ ११ ॥ ५७६ ॥
वह दिव्य गुणयुत सोम श्री माधुर्य टपकत सुरस को ।
श्री द्रोणनामक कलश में भलि भांति से पहुंचावतो ॥
इस सोम को श्री सप्त छन्दोबद्ध ऋषि की वाणियां ।
श्री यज्ञ के विच रीतिपूर्वक गान करत मनाति हैं ॥ १२ ॥ ५७७ ॥

इति दशम खण्ड समाप्त ॥

एकादश खण्ड का आरम्भ ।

हे सोम अति माधुर्ययुत प्रज्ञा व कर्म दिलावना ।
श्री पूजनीय प्रदीप्त मंगल मोद को उपजावना ॥
श्रीयुक्त इन्द्राभिध सुरेश्वर देव को हर्षावने ।
आनन्ददाता होयकर श्री शुद्ध वर्षण कीजिये ॥ १ ॥ ५७८ ॥

अथ द्वितीयाया ऊर्ध्वसद्मा ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप् छन्दः ।

अभिद्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।
विक्रोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥ ५७९ ॥

अथ तृतीयाया ऋजिश्वाऋषिः । पवमानो देवता । ककुप् छन्दः ।

आसोतापरिषिञ्चताश्वन्न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥ ५८० ॥

अथ चतुर्थ्याः कृतयशा ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप छन्दः ।

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥ ५८१ ॥

अथ पंचम्या ऋणच ऋषिः । पवमानो देवता । गायत्री, यवमध्या, वा ककुप् छन्दो वा ।

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥ ५८२ ॥

श्री अन्नदाता स्तुत्य सोम ! सुरालि के तुम प्राप्य हैं ।
अस आपकी हम सभी मिलकर प्रशंसा को गात हैं ॥
श्रीदीप्त अन्न कि राशि अभिमुख होय हम को दीजिये ।
श्री अन्तरिक्षी जलद को वृष्ट्यर्थ विदलित कीजिये ॥ २ ॥ ५७९ ॥

हे ऋत्विजों ! श्री सोम घोटक तुल्य द्रुतगति धारता ।
स्तुत्यर्ह हो गगनस्थ जल को प्रेरणा दिलवावता ॥
श्री ज्योतिप्रेरक पात्र विस्तृत नीरगामी सोम को ।
अभिमुख करो चहुं ओर श्री वसती वरी से सींचियो ॥ ३ ॥ ५८० ॥

श्री हर्ष का प्रेरक अनेकन धार को धरता रहै ।
संपूर्ण वांछा सिद्धिप्रद सब धनों को धारण करै ॥
इन गुणों से सम्पन्न इस श्री सोमसंज्ञक सुरस को ।
श्री देववृन्द-हितैषि ऋत्विग्वर्ग ने मिल दुहलियो ॥ ४ ॥ ५८१ ॥

जो धनप्रद जो दुग्धदात्री गवों को दिलवावता ।
जो भूमिदाता तथा उत्तम मनुज से मिलवावता ॥
उपरोक्त गुण समुदाय संयुत सोमनामक सुरस है ।
वह ऋत्विजों के वर्ग से भलि भाँति प्रकटित हो गया ॥ ५ ॥ ५८२ ॥

अथ षष्ठ्याः शक्तिर्ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप् छन्दः ।

त्वं ह्यांरंग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥ ५८३ ॥

अथ सप्तम्या उरुर्ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप् छन्दः ।

एष स्य धारया सुतो व्यावारेभिः पवते मदिन्तमः ।
क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥ ५८४ ॥

अथाष्टम्या ऋजिश्वा ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप् छन्दः ।

य उस्रिया अपि या अंतरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवारुज ॥ ८ ॥ ५८५ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

इति काकुभम् । इति पंचमोऽध्यायः ॥

श्रीयुक्त हे पवमान सोम ! अतीव द्युति को धारता ।
तुहि देवगण के जन्म आदिक को भली विधि जानता ॥
उन को अमरपद देन को अत्यन्त द्रुतगति धारता ।
श्री ऋत्विजों के वर्ग से अव्यक्त ध्वनि करवावता ॥ ६ ॥ ५८३ ॥

अति हर्षप्रद जल ऊर्मि सम क्रीडादि को करता हुआ ।
वह यहै श्रीयुत सोमनामक दिव्यरस अभिपुत हुआ ॥
श्री भेड़ की जो ऊन उससे बने पवित्र विशेष से ।
निज धार द्वारा निष्क्रमण कर कलश में टपकत रहै ॥ ७ ॥ ५८४ ॥

जो सोम प्रसरणशील औ असुरालि से नभ में धरे ।
अस मेघस्थित जलवर्ग को बल से दलित कर देत है ॥
वह सोम तू असुरालि-हृत गोवाजि अति फैलावता ।
हे शत्रुधर्षक ! कवचि सम असुरावलिहिं विनसावता ॥ ८ ॥ ५८५ ॥

इति श्रीमद्दधीचवंशावतंसाजयमेरुनगराभिजन, त्रिपाठीत्युपाख्य राजगुरु
पण्डित बदरीलालात्मज कविरत्न शिवदत्त काव्यतीर्थ प्रणीत
श्रीसामामृतसिन्धोः पंचमस्तरंगस्समाप्तः ॥

ॐ नमः शिवाय ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

---:o:---

तत्र प्रथमाया भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।

इन्द्र ज्येष्ठं न आभर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥ १ ॥ ५८६ ॥

अथ द्वितीयाया वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ २ ॥ ५८७ ॥

अथ तृतीयस्याः वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।

यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥ ५८८ ॥

हे इन्द्र ! अतिस्तुतियुक्त औ अत्यन्त बल दिलवावना ।
अस पूर्त्तिकारक अन्न हम सब जनों को पहुंचावना ॥
हे वज्रबाहु ! सुनास ! अन्न जिसे धरन हम चाहते ।
जिहिंये धरणि आकाश धारैं वहै अन्न दिलाइये ॥ १ ॥ ५८६ ॥

जो इन्द्र सब पशुजाति अरु नरवृन्द का अधिराज है ।
भूलोकवर्त्ती वित्त हो उसका भि श्रीसम्राज है ॥
इस हेतु हविदातार यष्टा को धनादि दिलावता ।
वह देवे स्तुति से तुष्ट अभिमुख होय वित्त दिवावना ॥ २ ॥ ५८७ ॥

श्रीदीप्ति से सम्पन्न अति कमनीय सुरपति देवता ।
जिसका यहै स्तुति आदि से संयुक्त हवि यहँ ठैरता ॥
श्रीस्वर्ग में वा चहूं दिशि दानी जनों के मध्य में ।
भजनीय निश्चय अतः इन्द्र प्रदान श्रेष्ठ अनन्त है ॥ ३ ॥ ५८८ ॥

अथ चतुर्थ्याः शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । चतुष्पाज्जगती छन्दः ।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अथादित्य व्रते वयन्तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥ ५८९ ॥

अथ पञ्चम्याः गृत्समद ऋषिः । पवमानो देवता । चतुष्पाज्जगती छन्दः ।

त्वया वयस्पवमानेन सोम भरे कृतं विचिनुयाम शश्वत् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥ ५९० ॥

अथ षष्ठ्या वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । एकपाज्जगती छन्दः ।

इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥ ६ ॥ ५९१ ॥

अथ सप्तम्या अमहीयुर्ऋषिः । पवमानो देवता । गायत्री छन्दः ।

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परिस्रव ॥ ७ ॥ ५९२ ॥

हे वरुण ! ऊंची शीसवाली पाश हमरि कटाइयो ।
नीचा पगोंवाला भि फन्दा शिथिल आप कराइयो ॥
विचले कमर के फंद को ढीला भली विधि कीजियो ।
आदित्य ! हम तुम अखण्डित व्रति तिन्हें पावन कीजियो ॥ ४ ॥ ५८९ ॥

हे सोम ! शुद्ध तिहार सँग हम युद्ध में बहुकृति करें ।
इस हेतु तुव साहाय्य लेति अनेक कार्यों को करें ॥
सो मित्र वरुण तथा आदिति श्रीसिन्धु पृथिवी और द्यौ ।
वे सभी धन का दानकर हम सबों को रख लीजियो ॥ ५ ॥ ५९० ॥

उपरोक्त मंत्रों में कथित श्रीमित्र आदिक देवता ।
इक दानि इस फल देनवारे सोम को प्रकटावना ॥
यह यज्ञ में जो काम हम सब जनों से मन भावता ।
उसको भली विधि से सकल तुम सफल कर बतलावना ॥ ६ ॥ ५९१ ॥

हे सोम ! वह तू धनादिक सम्पत्ति को दिलवावना ।
हम सबों का अीपूज्य अस जो इन्द्रसंज्ञक देवता ॥
श्रीवरुण औ श्री मरुद्गण पूजाहिं माना जावता ।
उनके लिये श्रीसोमरस धाराप्रवाह दिलावना ॥ ७ ॥ ५९२ ॥

अथाष्टम्या अमहीयुर्ऋषिः । पवमानो देवता । गायत्री छन्दः ।

३ १२   २२ ३२उ   ३ २ ३ १ २
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
१ २
सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥ ५९३ ॥

अथ नवम्या आत्मा ऋषिः । अन्नं देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

३ १ २   ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १   २ ३ १ २ ३ १ २
अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
यो मा ददाति स इदेव मावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ९ ॥ ५९४ ॥

इती प्रथमः खण्डः ॥

अथ द्वितीयः खण्डः ।

तत्र प्रथमायाः श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   १ २ ३ २ ३ १ २
त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥ ५९५ ॥

इस सोमरूपी अन्न से नर जाति के धनमात्र जे ।
उन सभी धनसमुदाय को भलिभांति सेती पावते ॥
औरीतिपूर्वक उन सबों को यथावस्थित बांटवे ।
हम सभी याज्ञिक-वृन्द मख में सविधि बांटि निबाहते ॥ ८ ॥ ५९३ ॥

श्री अन्न आत्मा से कहे मैं आदि का हूं देवता ।
श्री सुरों से पहले अमर प्रभु से प्रथम प्रकटित हुआ ॥
जो मुझे अभ्यागतों को देता वहै जग पालता ।
औ लोभि इकला खाय उसको मैं स्वयं संहारता ॥ ९ ॥ ५९४ ॥

इति प्रथम खण्ड समाप्त ॥

अथ द्वितीय खण्ड का आरम्भ ।

हे इन्द्र ! काले रंग को वा लालरंग धरावतीं ।
अथवा विचित्र प्रकार के जो वर्ण उनको धारतीं ॥
उन गवों में तुम श्वेत रंग के दूध को भल धारते ।
अत एव उस बल को सभी हम भली विधि से पूजते ॥ १ ॥ ५९५ ॥

अथ द्वितीयायाः पवित्र ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ।

* अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनेषु वाजयुः ।

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ २ ॥ ५९६ ॥

अथ तृतीयायाः मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥ ५९७ ॥

अथ चतुर्थ्याः ऋष्यादय उक्तवत् ।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥ ५९८ ॥

उषा समय का पृश्नि मुख्य यह सोम दिखावत ।
यह पर्जन्य-स्वरूप होय ध्वनि को प्रकटावत ॥
प्राणिवर्ग विच उन के अन्नादिक को चाहत ।
प्रज्ञायुत सुर इस सोम कि प्रज्ञा से रच दिय ॥
उसकी प्रज्ञा से मनुजद्रष्टा पालक देवता ।
तथा आंगिरस गर्भ को औषधि में धर देवते ॥ २ ॥ ५९६ ॥
श्री इन्द्र ने ही हरि असे विख्यात घोटकयुग्म को ।
इक साथ उत्तम रीति के उपयोग से योजित कियो ॥
जो अश्व कहने मात्र से रथ साथ झट जुड़ जावते ।
ये इन्द्र वज्रायुध तथा स्वर्णाभरण को धारते ॥ ३ ॥ ५९७ ॥
हे इन्द्र ! उग्र स्वभाव तुम अत्युग्रता जो धारतीं ।
ऐसी विपक्षी वर्ग के अँग सुरक्षा कहलावतीं ॥
उन से रणों में हमारे समुदाय की रक्षा करो ।
श्री सहस्रों गज वाजियुत संग्राम में भि बचाइयो ॥ ४ ॥ ५९८ ॥

---

* श्री उषा का उत्पादक सूर्य अपनी किरणों द्वारा मेघ बनाकर गर्जना करता है । फिर समस्त जीवों के लिये अन्नकी इच्छा करता हुआ रहता है । श्रीबुद्धिशाली देवता इसी की बुद्धि से सबको रचते हैं. अर्थात् इस सोमरस के एकांश मात्र के पीने से ही अग्न्यादि देवता स्वकीय व्यापारों से जगत् को धरते रहते हैं ॥

अथ पञ्चम्याः प्रथ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।

धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमाजभारावसिष्ठः ॥ ५ ॥ ५९९ ॥

अथ षष्ठ्याः गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री छन्दः ।

नियुत्वान्वायवागह्ययं शुक्रो अयामि ते ।

गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥ ६०० ॥

अथ सप्तम्याः नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।

तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥ ६०१ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

जिस वशिष्ठ के प्रथ सुत औ जिस भरद्वाज के ।
सप्रथु अस अभिधान धरावन वार पुत्र थे ॥
उनमें मेरा पिता अनुष्टुभ छंद सहित कर ।
श्रीहविष्यप्रद रथन्तराभिध सामप्रोक्त स्तव ॥
उसे विधाता से तथा दीप्तियुक्त सवितार से ।
और विष्णु से भली विधि प्रकट हुए को पालिया ॥ ६ ॥ ५९९ ॥

हे वायु वाहनवर्ग से संयुक्त तुम आजावना ।
यह शुक्ल रँग का सोम तेरे लिये धर रक्खा भला ॥
कारण सुयष्टावर्ग श्रीयुत सोमरस को काढता ।
उसके सदन के मध्य में तू चला करके जावता ॥ ७ ॥ ६०० ॥

अद्भुत गुणावलि से विभूषित इन्द्रसंज्ञक देवता ! ।
जिस समय वृत्र विनाश करने प्रकट तू होजावता ॥
तब भूमि को अत्यन्त ही काठिन्ययुत तुमने किया ।
औ द्युलोकहिं आकाश के सँग बाँध करके थाँभिया ॥ ७ ॥ ६०१ ॥

इति द्वितीय खण्ड समाप्त ।

अथ तृतीयः खण्डः ।

——:०:——

तत्र प्रथमाया वामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

२ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३२ ३ १ २र
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
१ २ ३ १२ ३ १ २र
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ १ ॥ ६०२ ॥

अथ द्वितीयाया गौतम ऋषिः । पवमानो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

२ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १र २र ३ १२
सन्ते पयांसि समुयन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
३ १२ ३१ २ ३१र २र ३ १ २
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥ ६०३ ॥

अथ तृतीयाया ऋष्यादिकं पूर्ववत् ।

२ ३ १र २र ३ २ ३ २३ १ २ ३ २
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वङ्गाः ।
१र २र ३ २S १ २ ३ १ २र १ १र २र
त्वमाततन्थोर्वा३न्तरिक्षन्त्वञ्ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ३ ॥ ६०४ ॥

अथ तृतीय खण्ड का आरम्भ ॥

श्री सत्यलोक स्थित प्रजापति नामधारी देवता ।
स्वर्गीय द्युति सम मम तनू बिच ब्राह्म तेज बढ़ावना ॥
श्रीयुक्त यश की प्राप्ति को भलि भाँति खेति बढ़ावना ।
औ यज्ञसम्बन्धी पवित्र शुभान्न को बढ़वावना ॥ १ ॥ ६०२ ॥

हे सोम रिपु हन्तार तोय पाकाहिं पय मिल जाइयो ।
श्री हव्य मिलियो आपसे औ वीर्य बल मिल जाइयो ॥
हे देव ! तुम अमरत्व पाने हर्ष को पाते हुए ।
श्री स्वर्ग में उत्कृष्ट अन्न हमार हित लिय धारते ॥ २ ॥ ६०३ ॥

हे सोम ! तुम इन सकल औषधि-वर्ग को रचते भये ।
तुमने हि जल की वृष्टि औ गो आदि पशु प्रकटित किये ॥
तुमने हि वितत प्रकाश सिरजा तथा जो अँधियार है ।
उसको स्वकीय प्रकाश से विध्वस्त कर बिखरा दिये ॥ ३ ॥ ६०४ ॥

अथ चतुर्थ्याः मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः।

३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३२३ १२
अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
१ २ ३ १२
होतारं रत्नधातमम्॥ ४॥ ६०५॥

अथ पंचम्या वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३१ २३१२ २२
ते मन्वत प्रथमन्नाम गोनान्त्रिः सप्त परमन्नाम जानन्।
१ २ ३ २३क २२ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १२
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः॥ ५॥ ६०६॥

श्रीयुत पुरोहित यज्ञ का श्री देव पदवी धारता।
मख का निगन्त्रक तथा श्रीयुत देवऋत्विज धाजता॥
श्री यज्ञरूपी रत्न को भलि भाँति सेती धारता।
अस अग्निनामक देव को मैं विरुद गाय मनावता॥ ४॥ ६०५॥

* अग्नि तिहारी स्तुति गावत श्रीयुक्त आंगिरस।
वाणी बीजजु शब्दमात्र तिहिं प्रथम लखत रह॥
पुनि त्रिसप्त (२१) उत्कृष्ट नाम स्तुति वा छन्दोगण।
उनको जान पिछान तिहारी स्तुति गाई भल॥
वे सर्वज्ञ गुणावली उषा काल को गात रहिं।
पुनि रविद्युति सें लाल गौ किरण तथा गौ प्रकट भईं॥ ५॥ ६०६॥

---

* तात्पर्य यह है कि हे अग्नि! ऋषियों ने पहले वाणी का बीज शब्द व परम मंत्र ओंकार को पाया। फिर शब्द का ज्ञान प्राप्त करके ७×३=२१ प्रकार के छंदों का भेद जाना। जिन के नाम ये हैं:—

१ गायत्री २ उष्णिक् ३ अनुष्टुप् ४ बृहती ५ पङ्क्ति ६ त्रिष्टुप् ७ जगती।

१ अतिजगती २ शक्करी ३ अतिशक्करी ४ अष्टि ५ अत्यष्टि ६ धृति ७ अतिधृति।

१ कृति २ प्रकृति ३ आकृति ४ विकृति ५ संस्कृति ६ अतिकृति ७ उत्कृति।

इन्हीं के भेदों से अनन्त छन्दों की रचना हुई हैं, जिनके द्वारा तुम्हारी स्तुतियां गाई गईं। फिर उन श्रेष्ठ पद्यावलियों ने उषा की महिमा गाई। तत्पश्चात् कान्ति-पुंज सूर्यनारायण की लाल रंग किरणें प्रकट हुईं। इत्यादि अर्थ हैं॥

अथ षष्ठ्याः गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

२ ३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३२३क२र
समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वन्नद्यस्पृणन्ति ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
तमूशुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुपयन्त्यापः ॥ ६ ॥ ६०७ ॥

अथ सप्तम्या वामदेव ऋषिः । रात्रिर्देवता । अनुष्टुप् छंदः ।

१र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र
आमागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतूंत्समीर्त्सति ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥ ६०८ ॥

---

* श्री वर्षा के नीर भूमि पर मिलत भली विधि ।
तथा प्रथम स्थित वहां सलिल मिल जात निकट वनि ॥
पुनि सब इक रँग नदी होय बड़वानल तोपत ।
जो जल से उत्पन्न शुद्ध द्युति को धर राखत ॥
ऐसा जलनिधिवर्त्ति जो पावक बड़वानल विदित ।
उसके पास विशुद्ध जल पास जाँय स्थिति को लहत ॥ ६ ॥ ६०७ ॥

श्री सूर्यताप मिटावनी आनन्द को उपजावनी ।
अँधियार से संयोग करनी रात्रि सम्मुख आवती ॥
श्री चन्द्र की किरणावली की योजना को चाहती ।
अतएव श्री जग-मोद देनी रात्रि प्रकट हुआवती ॥ ७ ॥ ६०८ ॥

---

* श्री यजुर्वेद पर वेददीपाख्य-भाष्यकर्त्ता महीधर लिखते हैं कि जिन घड़ों से सोम कण्डनार्थ जल लाया जाता है, वे एक धन कहाते हैं । इसी से उनके जल को "एक धन" कहते हैं । तथा वहीं लिखा है कि उत्तर वेदी के निचयार्थ जिस भूमि-भाग में मिट्टी खोदते हैं, वह स्थान "चात्वाल" कहाता है और "उत्कर" भी स्थान विशेष का नाम है । वेददीप १ । २५ में लिखा है कि स्फ्य नामक यज्ञपात्र से उखाड़ी हुई मिट्टी को उत्कर कहते हैं । तात्पर्य यह है कि एकधन और वसती-वरीसंज्ञक जल होते हैं वे सब चात्वाल और उत्कर नामक स्थानों से मिलकर मेघ-मण्डल द्वारा बरसते हुए नदी बन कर समुद्र को प्राप्त होते हैं ॥

अथाष्टम्या भरद्वाजो बार्हस्पत्यऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती छन्दः।

प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ ८ ॥ ६०९ ॥

अथ नवम्या भरद्वाजऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः।

विश्वेदेवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपान्नपाच्च मन्म।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥ ६१० ॥

अथ दशम्या वामदेवऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। महापंक्तिश्छन्दः।

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ॥
यशस्व्या३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥ ६११ ॥

श्री हव्यान्न समेत वृष्टिकर्त्ता द्युति धारत।
अस वैश्वानर के सुतेज को शीघ्र मनावहुँ ॥
अतः हमारे वचन यज्ञ में बहुत प्रशंसत।
ऐसे श्री सर्वज्ञ जातवेदाभिध श्री सुर ॥
श्री नव पावक के लिये शुद्ध सुखद स्तुति निकल कर।
यों जावें ज्यों सोमरस दशा पवित्र से स्रवत ॥ ८ ॥ ६०९ ॥

सब देव मेरे श्रेष्ठ स्तव वा हव्य को ले लीजियो।
श्री अग्नि औ धरणी अकाश हमारि स्तुति चित दीजियो ॥
श्री सुरों! तुम से जो विरुद्ध अक्षे न वाक्य उचारता।
औ आपके सान्निध्य में सुख-सहित रह हर्षावते ॥ ९ ॥ ६१० ॥

श्री पृथिवी अरु गगन उन्हीं का सुख मोय मिलियहु।
इन्द्र बृहस्पति का भि सुयश मुझको मिलजाइय ॥
श्री भास्कर की कीर्त्ति प्राप्त मुझको होजावउ।
औ श्री सुयश कदापि मुझे नहिं छोड़ जाइयउ।
श्री यश से सम्पन्न यह सभा तासु यश नहिं तजे।
मैं सर्वत्र प्रधानतायुत वक्ता होजाइ हौं ॥ १० ॥ ६११ ॥

अथैकादश्या हिरण्यस्तूपऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य नु वीर्य्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ ११ ॥ ६१२ ॥

अथ द्वादश्या विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

३ १२ ३ १ २ ३१२ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३२
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृतम्म आसन् ।
३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रञ्ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥ १२ ॥ ६१३ ॥

श्री वज्रधारी इन्द्र ने पहले पराक्रम जो किये ।
उनको त्वरा के साथ उत्तम रीति से वर्णन करूं ॥
जिन मेघ का वध किया अरु जल को धरणि पै गेरिया ।
श्री पर्वतों से प्रकटि कूलंकषा मिच जल प्रेरिया ॥ ११ ॥ ६१२ ॥

* अग्निदेव जनमत मैं हूं सर्वज्ञ नामधर ।
घृत है मेरा चक्षु आज्य वा है मम द्योतक ॥
प्रभारूप अविनाशि ज्योति मम मुख बिच निवसत ।
त्रिधारूप-धर्त्तार पूज्य श्री प्राण वही मैं ॥
तथान्तरिक्ष स्थान का मापक वायु भि मैं हि हूं ।
किंबहुना श्री नित्यद्युति रवि हवि अरु श्री ब्रह्म मैं ॥ १२ ॥ ६१३ ॥

---

* पक्षान्तर यह है कि वह (अग्निः) मैं अग्नि प्रकट होता हुआ ही श्रवण मननादि साधनों के बिना ही श्री परमतत्त्व का साक्षात्कर्त्ता हूं । (घृतं मे चक्षुः) जो इस समस्त संसार को दिखाने वाला तथा मेरे स्वभाव का द्योतक व दीप्तियुक्त चक्षुस्थानी जो घृत है वह अत्यन्त प्रकाशित है । यह जो (अमृतम्) कर्म का फल नाना विषयभोगादियुक्त सो (मे) मेरे (आसन्) मुख में है । इस प्रकार पृथिव्यादिकों में अपना आधिपत्य दिखाकर वायुरूप से अन्तरिक्ष का अधिष्ठातृत्व बताते हैं कि अर्क अर्थात् संसार का स्रष्टा प्राण वही मैं "त्रिधातुः" आत्मा को त्रिधा करके वहां वायुरूप से (रजसः) अन्तरिक्ष लोक का (विमाता) अधिष्ठाता हूं । अथ आदित्यरूप से द्युलोक का अधिष्ठातृत्व बताते हैं कि (अजस्रं ज्योतिः) अर्थात् अनुपक्षीण नित्य तेज प्रकाशात्मा द्युलोक का अधिष्ठाता आदित्य भी मैं हूं इस प्रकार अपनी भोक्तव्य-रूपता दिखाकर भोग्यरूपता भी दिखाते हैं कि जो कुछ हव्य पदार्थ भोग्य हैं, वह सब मैं ही हूं ॥

अथ त्रयोदश्या ऋष्यादय उक्ताः ।

पात्यग्निर्विपो अग्रम्पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ १३ ॥ ६१४ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथ चतुर्थः खण्डः ॥

तत्र प्रथमाया वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । पंक्तिश्छन्दः ।

भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वन्नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशे दाः ॥ १ ॥ ६१५ ॥

अथ द्वितीयाया वामदेव ऋषिः । ऋतवो देवता । पंक्तिश्छन्दः ।

* वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥ २ ॥ ६१६ ॥

श्री अग्नि विस्तृत धरातल का मुख्य स्थान बचावता ।
सामर्थ्ययुत यह सूर्यपद श्री अन्तरिक्षहिं ढावता ॥
श्री गगनवर्त्ती मरुद्गण की सुरक्षा को आचरै ।
श्री ललित यह सुरसुखद मख के त्राण को करता रहै ॥ १३ ॥ ६१४ ॥

इति तृतीय खण्ड समाप्त ।

अथ चतुर्थ खण्ड का आरम्भ ॥

श्री अर्चिजों से दीप्त ! श्रीयुत अग्निसंज्ञक देवता ।
द्युतियुक्त जिह्वा मुखविषें स्थित हव्य को लेलेवती ॥
हे देव ! धन-प्रापक ! हमारे हेतु तुम हवियुक्त जो ।
श्री सम्पदा उसको तथा दृष्ट्यर्थ तेज दिलाइयो ॥ १ ॥ ६१५ ॥

श्री वसन्ताभिध ऋतुहि श्री मंगल-प्रदाता होत है ।
श्री ग्रीष्म ऋतु सुखदाइ श्री वर्षा अनन्द दिलात है ॥
पुनि शरद ऋतु कल्याणकारक गुणों को धारण करै ।
हेमन्त हर्ष दिलाय औ श्री शिशिर सुखप्रद होइ है ॥ २ ॥ ६१६ ॥

---

* चैत्र वैशाख=वसन्त । ज्येष्ठ आषाढ=ग्रीष्म । श्रावण भाद्रपद=वर्षा । आश्विन कार्तिक=शरद् । मार्गशीर्ष पौष=हेमन्त और माघ फाल्गुन=शिशिरऋतु ॥

अथ तृतीयायाः नारायणऋषिः । विराट् पुरुषो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
* सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ३ ॥ ६१७ ॥

अथ चतुर्थ्याः ऋष्यादिकं पूर्ववत् ।

३ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
२ ३ २ ३ क २२ ३ २ ३ २
तथा विष्वङ्व्यक्रामदशनानशने अभि ॥ ४ ॥ ६१८ ॥

अथ पंचम्या ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ उ ३ २ ३ १ उ ३ १ २
† पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥ ५ ॥ ६१९ ॥

श्री विराट स्वरूप प्रभु का सहस्र मस्तक धारनो ।
श्री सहस्रों नेत्रवाल और सहस्र चरण रखावता ॥
सर्वत्र चर औ अचर में निज व्याप्ति को फैलावता ।
श्री दशांगुलि-मित देश को अतिक्रमण कर स्थिति पावता ॥ ३ ॥ ६१७ ॥
जो यह त्रिपाद परेश माया से परे ऊंचा रहा ।
इसके इकल्ले अंश से माया त्रिगुण जग रच दिया ॥
पुनि स्वमायावश अनगिनत रूपादि सेती व्यापिया ।
भोक्ता अभोक्ता रूप से संसार में व्यापक हुआ ॥ ४ ॥ ६१८ ॥
यह वर्त्तमान समस्त जग वह ही परम प्रभु ईश है ।
यह ही अतीत भविष्य औ कल्पान्तव्यापी ईश है ॥
सम्पूर्ण सृष्टि त्रिकाल की चौथाय इसका अंश है ।
औ त्रिपादों से स्वर्ग में स्वानन्दयुत यह स्थित रहे ॥ ५ ॥ ६१९ ॥

---

* कितनेक विद्वान् दशांगुल से यह अर्थ निकालते हैं कि समस्त प्राणियों की जो जो योनियां हैं उन २ की आकृतियों के अनुसार ही उनकी उंगलियां हैं, अतः उन सब के नाभि-मण्डल से दश अंगुलपरिमित स्थान पर हृदयरूपी कमल है, जिस पर वह अन्तर्यामी ज्योतिःस्वरूप विराजमान हो रहा है ।

† उपनिषदों में जो प्रतिपादन किया गया है कि "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान सत्य और ब्रह्म अनन्त है, तो वह चतुष्पाद् कैसे हुआ । फिर कहा गया कि एक पाद से तो सब संसार की रचना और त्रिपाद से वह स्वात्मानन्द में स्थित है । सो तात्पर्य इसका यह है कि वह अनन्तानन्त-शक्तिसम्पन्न परमेश्वर है, सृष्टि आदि की रचना उसके आगे बहुत छोटी बात है इसी हेतु वह कर्त्ता धर्त्ता होता हुआ तथा सब में व्याप्त होता हुआ भी सब से निरन्तर है, ऐसी अगाध महिमायुक्त केवल वही एक परब्रह्म परमात्मा है अतः विरोधावसर नहीं है ।

अथ षष्ठ्या ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ६ ॥ ६२० ॥

अथ सप्तम्याः नारायण ऋषिः । स्रष्टा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

* ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥ ६२१ ॥

अथाष्टम्या वामदेव ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । त्रिष्टुप् (उपरिष्टाज्ज्योतिः) छन्दः ।

मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ८ ॥ ६२२ ॥

इतनी हि महिमा इस कि नहिं वह पुरुष इससे है बड़ा ।
औ अमर-पद देवत्व उसका परम ईश्वर सर्वथा ॥
अन्नादि भोज्य पदार्थ से जिस जगत का निर्वाह हो ।
उस नियम से पर तथा विश्वहिं कर्मफल दिलवावतो ॥ ६ ॥ ६२० ॥
उस आदिपूरुष सेति श्री ब्रह्माण्डतनु प्रकटित हुआ ।
उसके अधारहिं पै पुरुष, श्री जीव आत्मा होगया ॥
वो श्री विराट स्वरूप से अलग हि स्वस्थिति करता रहा ।
पुनि भूमि रच श्री सप्तधातु-विशिष्ट तनु रचता भया ॥ ७ ॥ ६२१ ॥
हे धरणि औ आकाश ! तुम को सुरक्षक मैं मानता ।
तुम अपरिमित वित्तादि उसको भलि-विधि फैलावना ॥
श्री धरातल औ गगन ! तुमरा कार्य सुखप्रद हूजियो ।
दोनोंहिं वे हम को निषिद्धाचरण सेति बचाइयो ॥ ८ ॥ ६२२ ॥

---

* उस आदिपुरुष से ब्रह्माण्ड देह हुआ । उस विराट् देह के आधार से कोई पुरुष विशेष (महादेव) हुआ । वही फिर माया का आश्रय लेकर जीवात्मा होकर देव, तिर्यक् मनुष्यादि रूपों को धारण करता हुआ । अथर्वणोक्त उत्तरतापिनी में लिखा है कि वही यह पंचभूत, इन्द्रिय, विराट्, देवता और कोशों को बना कर जैसे कोई अजान लेख करता है वैसे आप ही अपनी माया से नाना रूपों से व्यवहृत होता है, इसी विषय को उपनिषदों ने विस्तार से दरसाया है ।

अथ नवम्या वामदेव ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
तन्त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥ ९ ॥ ६२३ ॥

अथ दशम्या वामदेव ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मासꣳ सृजामसि ॥ १० ॥ ६२४ ॥

अथैकादश्या वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

सहस्तन्न इन्द्रदद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुन्न नृम्णं स्थविरञ्च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥ ११ ॥ ६२५ ॥

हे इन्द्र ! डाढी मूछ तेरे सोम से होते हरे ।
औ तिहारे घोड़े हरे ही रंग को नित धारते ॥
श्री काव्य के कर्त्तार जिनकी भारती पूजाई है ।
ऐसे महाकवि तिहारी विरुदावली को गाय हैं ॥ ९ ॥ ६२३ ॥

श्री स्वर्णनामक धातु का जो दिव्य गुणयुत तेज है ।
औ गवों का अथवा किरण-मालावली का तेज है ॥
श्री सत्य से सम्पन्न श्रीयुत ब्रह्म का जो तेज है ।
उन तेज-पुंजों से सभी हम तेजवन्त हुआइ हैं ॥ १० ॥ ६२४ ॥

श्री सत्यवाक्य सुरेन्द्र ! तुम रिपुनाशि बल दीजे हमें ।
कारण तुही उस परम बल की ईशता धरता रहै ॥
अतएव इन्द्र ! हमारे क्रतुसम धन अधिक बल दीजियो ।
रिपुगणों को औ विरोधिन को रोकलें अस शक्ति दो ॥ ११ ॥ ६२५ ॥

अथ द्वादश्या वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

३१२ ३१२ ३२३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहर्षभाः सहवत्साउदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।
३२ ३२३१ २ ३२ ३१२ २र ३ २ ३१ २
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इहस्त ॥ १२ ॥ ६२६ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथ पंचमः खण्डः ॥

——:०:——

तत्र प्रथमाया वैश्वानर ऋषिः । (वैखानसाः ऋषयः) अग्निः पवमानो देवता । गायत्री छन्दः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
३१ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥ ६२७ ॥

अथ द्वितीयाया विभ्राट् सूर्यपुत्र ऋषिः । सूर्यो देवता । जगती छन्दः ।

३ २ ३१ २ ३ २उ ३१ २ ३१ २ ३१ २
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा विराजति ॥ २ ॥ ६२८ ॥

श्री वृषभ औ वत्सों सहित दुउ समय दुग्ध प्रदायिनी ।
श्रीरँग विरंगी गवें तुम आनन्द-संयुत आइ हैं ॥
लम्बा तथा चौड़ा जगत् यह सकल तुम्हरा हूजियो ॥
ये नीर यहँ बिन कष्टपेय हुवो तथा यहँ बैठियो ॥ १२ ॥ ६२६ ॥

पवमानरूपी अग्नि ! तुम हम सब जनों की आयु को ।
अथवा विविध अन्नर्द्धि को भलिभाँति से बरसात हो ॥
हम सबों के लिय अन्नरस औ अन्न को भल प्रेरियो ।
औ दुष्ट राक्षसवर्ग को हमसे अलगही गेरियो ॥ १ ॥ ६२७ ॥

अतिदीप्त भास्कर श्रेष्ठतायुत सोमरस को पीजियो ।
यजमान को निर्भय अवस्था वान्न-राशिहिं देवतो ॥
जो सूर्य, प्रेरित वायु से स्वयमेव जग को पालता ।
वह रवि प्रजा को पोषता अधिकाइ सेती भ्राजता ॥ २ ॥ १२६ ॥

अथ तृतीयायाः कुत्सऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

चित्रं देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३ ॥ ६२९ ॥

अथ चतुर्थ्याः सार्पराज्ञी ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री छन्दः ।

आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरम्पुरः ।
पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥ ६३० ॥

अथ पंचम्या ऋष्याद्यः पूर्ववत् ।

* अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥ ६३१ ॥

श्रीरश्मियों का पुंज रवि उगने लगा आश्चर्य है ।
श्रीमित्र वरुण तथाग्नि का चक्षुः स्वरूपी होय के ॥
धरणी अकाश तथान्तरिक्षहिं उदित-द्युति से पूरिया ।
श्रीचराऽचर संसार का श्रीसूर्य आत्मा होरहा ॥ ३ ॥ ६२९ ॥
गतिशील विततप्रकाश इस रवि ने उदय-गिरि पालिया ।
पुनि पूर्व में जगमात पृथ्वी को भलीविधि पावता ॥
उपरान्त दिव औ अन्तरिक्षहिं शीघ्रता से जावता ।
उत्तम गमन करता तथा स्वर् द्युलोकहिं पाजावता ॥ ४ ॥ ६३० ॥
इस सूर्य की शुभज्योति तनु में प्राण होकर स्थिति करै ।
औ प्राण सेति अपान बनकर अधोवर्त्ती होरहै ॥
अस दीप्ति से सम्पन्न श्रीयुत दिवाधीश्वर देवता ।
श्रीमहामहिम द्युलोक अरु अन्तरिक्षहिं द्युति देवता ॥ ५ ॥ ६३१ ॥

---

* पक्षान्तर में यह भी अर्थ है कि जब प्रभात को सूर्योदय होता है तब समस्त प्राणियों में प्राणवायु का संचार अर्थात् काम करने की शक्ति उत्पन्न होती है । और जब अस्त होता है तब अपान अर्थात् शिथिलता सभी पदार्थों की होने लगती है । ऐसी महिमा इस सूर्यदेव की ही है कि जिससे सब संसार का व्यवहार सिद्ध होता रहता है ।

अथ षष्ठ्या ऋष्यादय उक्ताः ।

* त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥ ६३२ ॥

अथ सप्तम्याः काण्वः प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री छन्दः

† अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥ ६३३ ॥

अथ अष्टम्या ऋष्यादिकं पूर्ववत् ।

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥ ६३४ ॥

श्रीदिवस औ रजनी कि घड़ियां तीस रवि द्युति से लसें ।
श्री सूर्यहित स्तुति वाणि सब से गाइ भलिविध जात है ॥
अथवा प्रभाकर तीस घड़ि भलि भाँतिद्युति धारण करे ।
तब त्रयीरूपा वाणि रविहित गेह सब से जात है ॥ ६ ॥ ६३२ ॥
वे प्रथित तस्कर-तुल्य तारागणों के समुदाय जे ।
श्री देव गेहस्वरूप अथवा सुगति को जो पावते ॥
वे सर्वद्रष्टा सूर्यसंज्ञक देवता के तेज से ।
रजनी गणों के साथ साथहि दूर हट कर जावते ॥ ७ ॥ ६३३ ॥
इस प्रभाकर के किरण चहुँ दिशि तेज को फैलावते ।
सब जनों के समुदाय को भलि भाँति से लख लेवते ॥
तात्पर्य जैसे अग्निगण निज तेज से भासित करें ।
वैसे दिवाकर-रश्मियां सब को प्रकाशित आचरें ॥ ८ ॥ ६३४ ॥

---

* श्रूयते हि, "ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते, यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । सामवेदेनास्तमये महीयते, वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्य इति" ॥

† श्रुतियों में लिखा है कि ये तारे देवताओं के घरस्वरूपी हैं अथवा जो मनुष्य पुण्य करते रहते हैं वे नक्षत्ररूप से प्रकाश पाते और वे सभी सूर्य के प्रकाश से ऐसे छविहीन होजाते हैं, जैसे चोर इत्यादि भी रात के साथ २ ही छिप जाते हैं ॥

अथ नवम्या ऋष्यादय उक्ता एव ।

* तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥ ६३५ ॥

अथ दशम्या अपि ऋष्यादिकं पूर्ववत् ।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १० ॥ ६३६ ॥

हे सूर्य ! वा परमेश जग को पार करते तारते ।
संपूर्ण से द्रष्टव्य, शुद्ध प्रकाश को उपजावते ॥
श्री विश्व शुचिआकाश वा संसार को दिपवावते ।
अस सूर्य वा श्री परमपूरुष तुल्य स्तुति को पावते ॥ ९ ॥ ६३५ ॥

हे सूर्य ! तुम सुर विट् (प्रजाः) मरुत् के सामने उगजावते ।
औ मनुष्यों के वृन्द के सम्मुख उदय को पावते ॥
श्रीयुक्त सुर-समुदाय उनकी वप्रति श्री सुरलोक है ।
उसके विलोकन के लिये सम्मुख उदित तुम होवते ॥ १० ॥ ६३६ ॥

---

* हे सूर्य ! तुम तरणि अर्थात् सब संसार की यात्रा करने वाले हो वा रोगों से छुड़ाते हो । सब से देखने योग्य हो । (यहाँ तक कि चाण्डालादि निषिद्ध जातियों का असमय देखना होतो सूर्य के दर्शन से तज्जन्य अनिष्ट व रोगादि का निवारण होता है) प्रकाश के दाता अर्थात् समस्त पदार्थों को अपने तेज से भासित करते हो अर्थात् रात्रि में सूर्यास्त होने पर चन्द्रादि पर सूर्य की किरणें गिरकर लौटती और अन्धकार को निवृत्त करती हैं । जैसे घर के द्वार पर दर्पण में सूर्य की किरणें पड़ती और वहां से लौटकर घर के भीतर का अन्धकार हटाती हैं तद्वत् । इससे जाना जाता है कि सूर्य के प्रकाश से चन्द्रादि का प्रकाशित होना प्राचीन वैदिकों से जाना हुआ सिद्धान्त है, नवीन पश्चिमी विदेशियों ने ही इस बात को जाना यह बात नहीं । श्रीसायणाचार्य ने अपने भाष्य में इस को भलीभाँति से समझाया है ।

अथैकादश्या अपि ऋषिदेवताछन्दांस्युक्तानि ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तञ्जनाँ अनु ।
१ २ ३ १ २
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥ ६३७ ॥

अथ द्वादश्या ऋष्यादय उक्ता एव ।

१२ ३१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
व्यासेषि रजः पृथ्वहामिमानो अक्तुभिः ।
२ ३ १ २
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १२ ॥ ६३८ ॥

हे सर्व-शोधक ! दुःखनाशक सूर्यसंज्ञक देवता ! ।
तू प्राणित्राता लोक की जिस तेज से सुधि लेवता ॥
उस दिव्यगुणसम्पन्न तेरे शुद्ध बुद्ध प्रकाश को ।
हम सबों का समुदाय मिलकर भलीभाँति मनावतो ॥ ११ ॥ ६३७ ॥

हे सूर्य ! तुम विस्तीर्णता-संयुक्त ऐसे लोक को ।
द्यौ अन्तरिक्षाभिध सुलोकहिं भली विधि से जात हो ॥
औ दिवस अरु रजनी इन्हीं के साथ मान करावता ।
औ प्राणियों के वर्ग इनको दिव्य द्युति पहुंचावता ॥ १२ ॥ ६३८ ॥

द्वितीय पक्ष में (हे सूर्य) अर्थात् हे सर्वप्रेरक अन्तर्यामिन् ! (तरणिः) संसार-सागर से पार करने वाले हो । (विश्वदर्शतः) सम्पूर्ण मुमुक्षु जनों से साक्षात् करने योग्य हो । (ज्योतिष्कृत्) सूर्यादि प्रकाशित पदार्थों के रचयिता हो । इस प्रकार चेतनस्वरूपता से समस्त संसार को तथा दीप्तियुक्त समस्त तैजस पदार्थों को प्रकाशित आपही करते रहते हो यथाः—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं यस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ मुण्डकोपनिषद् ॥

अथ त्रयोदश्या ऋच्यादयः पूर्ववत् ।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥ ६३९ ॥

अथ चतुर्दश्या ऋच्यादयः पूर्ववत् ।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥ ६४० ॥

इति षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥

श्री सूर्य ने शुचिदायिनी श्री घोड़ियाँ किरणालि ना ।
जो सात संख्या धरें उनको स्वरथ-सँग योजित किया ॥
रथ-रश्मियाँ तिन्ह जोहि रथ सँग चहुगृह को जावता ।
ऐसे दिवाकर देव के लिय द्रव्य सब पहुँचावना ॥ १३ ॥

हे अगर ! सर्व प्रकाशदाता ! दिवाधीश्वर देवते !
श्री किरणरूपी सात अश्व रथस्थ तोय लेजावते ॥
जिस सूर्य की द्युतियाँ हि केशस्वरूपिणी कहलावतीं ।
सब शोचिष्केश दिनेश को भलि भाँति से पहुँचावतीं ॥ १४ ॥ ६४० ॥

इति श्रीमद्दधीचवंशावतंसाजयमेरुनगराभिजन, श्रीजानकी गर्भसमुद्भव, त्रिपाठीत्युपाख्य राजगुरु पण्डित बदरीलालात्मज कविरत्न शिवदत्त काव्यतीर्थ प्रणीत श्रीसामामृतसिन्धोष्षष्ठस्तरंगः समाप्तः ॥

शिवमस्तु ॥

ॐ नमः शिवाय ।

अथ महानाम्न्यार्चिकः ।

———:o:———

अथ प्रथमास्तिस्रः सर्वासां प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
शिक्षा शचीनाम्पते पूर्वीणाम्पुरूवसो ॥ १ ॥ ६४१ ॥
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३र्णांशुः ।
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्रद्युम्नाय न इषे ॥ २ ॥ ६४२ ॥
एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आयाहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥ ६४२

इन्द्रदेव ! तुम लखो क्योंकि सब को लखलेवत ।
श्री यष्टा से प्राप्य देश को तुम पहचानत ॥
अथवा निज की स्तुतियों को तुम भलि विधि जानहु ।
पुनि यजमान-हितार्थ स्वर्ग का मार्ग बतावहु ॥
श्रीयुत कर्माधीश ! वा असंख्यात प्रजापते ! ।
अतिधनि ! इन विरुदालि से ऋद्धि सिद्धि दे दीजिये ॥ १ ॥

श्री आदित्य समान व्याप्ति को इन्द्र धरावत ।
अभिशस्तियुत ज्ञानवन्त अब इन्द्र नामसुर ! ॥
हम जिस स्तुति को गाँय उसे भलिभाँति चित्त धर ।
इन्द्र ! हमें यश तथा अन्न धन लाभ करन हुव ॥
निश्चय तुम श्रीशक्र हो इसलिय दान-समर्थ हो ।
इसी हेतु हम सवन हित दान वित्त का कीजियो ॥ २ ॥

वज्रायुध-धर इन्द्र देव ! आगमनकारि सुर ।
श्रीधन किंवा अन्न देन हित तुष्ट हुजाइय ॥
हे अतिशय बलवन्त ! वज्र आयुध के धारक ! ।
हम सब से धन लाभ हेतु पूजे तुम आवत ॥
हे अतिदानी ! पूज्यवर ! हम से पूजा पावते ।
यहां आय श्रीसोम पी अतिप्रसन्न होजाइये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयास्तिस्रः।

दिदा राये सुवीर्यं भगवो यातानामपतिदेशां मनु।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥ ६४४ ॥

यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः।
चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥ ५ ॥ ६४५ ॥

ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतम् बृहत् ॥ ६ ॥ ६४६ ॥

इन्द्र ! सुस्तुतिपन वा रणमें अपराभव दीजिय।
धन की रक्षा हेतु भक्ताधिपता को पाइय ॥
वांछितार्थ मनुदाय तथा यजमानों के गण।
उनको अपने वशवर्ती करलेवहु हौं तुम ॥
हे अतिशय बल धारने ! जो धनवन्तों में मथित।
इसी हेतु इन याचनाओं से अजित रहो नित ॥ ४ ॥ ४ ॥ ६४४ ॥

श्री आदित्य समान दीप्तियुत इन्द्र देववर !।
ज्ञानवन्त हमको धन के निकटस्थ बनावहु।
इन्द्र परम ऐश्वर्ययुक्त सब ये विख्यतया।
उसी देव को भलीभाँति से स्तुति को गावहु।
ऋषि आत्मा थे कहत अब निश्चय इन्द्र रिपुघ्न है।
अर्ने पूज्य इस हेतु ही उसकी स्तुति को गाइये ॥ ५ ॥ ६४५ ॥

अब इन्द्रहि रक्षार्थ सभी हम लोग बुलावहिं।
जो रणजेता तथा पराजय पाय कभी नहिं।
वहे इन्द्र हमरे रिपु को विनशाय हटावहु।
पुनि हमरे यज्ञादि कर्म को सफल करावहु।
श्री गायत्र्यादिक स्तुतिहिं तथा सोम के सुरस को।
अथवा सत्य सुकर्म को अति फलसंयुत कीजियो ॥ ६ ॥ ६४६ ॥

अथ तृतीयाग्निसः ।

इन्द्र धनस्यसातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ॥ ७ ॥ ६४७ ॥

पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय ।
सुम्न आधेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ॥
वशी हि शक्रो नूनंतन्नव्यंसन्न्यसे ॥ ८ ॥ ६४८ ॥

प्रभोजनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै ।
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥ ६४९ ॥

जो रण में नहिं कभी किसी से होत पराजित ।
अस इन्द्रहिं हम धन की रक्षा हित बुलवावत ॥
हमरे सँग विद्वेष रखें ऐसे जो रिपुगण ।
चाहे वे हों बाह्य तथा आभ्यन्तर रिपुदल ॥
उन सब शत्रुसमूह को वही इन्द्र विदलित करै ।
उन सब शत्रु समूह को वही इन्द्र विदलित करै ॥ ७ ॥ ६४७ ॥

वज्रधारि ! प्राचीन भाव के धारक हो तुम ।
अस तुम्हार जो चित्त उसे हम सबहिं दान करु ॥
इन्द्र ! यही जो सोमलता निष्कर्ष सोमरस ।
हर्षप्रद है वसो ! हमें सुख धन में स्थापिय ॥
श्रेष्ठ बली ! श्रीदान तुव सब से स्तुति को पावता ।
अवशि समर्थ वशी अतः दान तोर स्तुति पावता ॥ ८ ॥ ६४८ ॥

हे स्वामी ! वृत्रारि ! नव्य तुझ को मैं निश्चय ।
मख में धरपूं वा नवीन तुम हम से पूजित ॥
श्री यज्ञों में बात परस्पर में कर लेवहिं ।
जो समर्थ रणमध्य गवों को लेवन जावत ।
मित्र इसी से सुख करै सत्यरूप को धारता ।
इत्यादिक गुण गणों से युक्त इन्द्र है देवता ॥ ९ ॥ ६४९ ॥

अथ पञ्चपुरीषपदानि ।

एवाह्येऽ३ऽ३ऽ३वएवा ह्यग्नेएवाहीन्द्र ।
एवाहिपूषन् एवाहिदेवाः ॥ १० ॥ ६५० ॥

इति महानाम्न्यार्चिकः पूर्वार्धश्च समाप्तः ॥

हे इन्द्र ! निश्चय पूर्ववर्णित गुणों से तुम युक्त हो ।
इस हेतु हमरे यज्ञ के बिच आइयो पुनि आइयो ।
श्री अग्नि औ पूषाभिधानी इन्द्र ! औ सब देवता !
हम याज्ञिकों के यज्ञ तिन्ह में सभी आप पधारना ॥ १० ॥ ६५० ॥

उपरोक्त मंत्र में इन्द्र ही को अग्निवायु और पूषादि नाम से पुकारा है और अन्य समस्त देवों को भी इन्द्र ही के नाम से सम्बोधित किया है और उसी को यज्ञ में बुलवाया है सो उसी एक ही की स्तुति से सभी का आवाहन समझना चाहिये । ये सभी नाम उस परमेश्वर के हैं और वही सर्व गुणाढ्य है, अतः उसी का आवाहन व प्रार्थना यज्ञ सम्बन्धी कार्यों में समझनी चाहिये । और कहीं २ ये शब्द अलग २ देवताओं के लिये भी आते हैं जैसा प्रसंग हो वहां वैसा ही अर्थ समझना चाहिये । द्विरुक्ति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति का प्रकाश करती है, इति शम् ॥

इति महानाम्न्यार्चिक समाप्त ॥

☞ यह महानाम्न्यार्चिक छंद आर्चिक और उत्तरार्चिक दोनों का मध्यवर्ती भाग है । ये एक रीति से शक्वरी छंद की ऋचा हैं; जिनका इन्द्र देवता है और अन्त में पुरीषपद नाम से प्रसिद्ध ५ पद हैं । ये मूल में ३ ऋचा हैं परंतु उपसर्गों के सहित वेदपाठी लोग इन्हें ९ (नौ) करके पढ़ते हैं । ऐतरेय-ब्राह्मण-विहित षोडशी शस्त्र में भी ३ तीन ही महानाम्नी कही हैं और त्रैलोक्याधार का वर्णन है ।

अब यहां प्रश्न होता है कि यदि ये शक्वरी छंद हैं तो इनमें छप्पन २ अक्षर होने चाहियें । क्योंकि २४ अक्षरों से लेकर चार अक्षर बढ़ाते हुए जो श्रीपिंगला-नुसार गायत्री से अतिधृति-पर्यंत २१ छंद बनाये जाते हैं तदनुसार ५६ अक्षरों की शक्वरी होती है, परंतु इनमें ५६ से अधिक अक्षर हैं । इसका उत्तर यह है कि स्वतः तो इनमें ५६ ही अक्षर हैं । पर बीच २ में "उपसर्ग" नामक पद मिल रहे हैं जिनसे अधिक अक्षर जान पड़ते हैं । यह बात श्रीसायणाचार्य ने विस्तार-पूर्वक दिखाई है ॥ शिवमस्तु । शिवमस्तु । शिवमस्तु ॥

अवश्य पढ़िये ! अवश्य पढ़िये !

शुभ-सूचना ॥

विदित हो कि इस बात को प्रायः सभी मतवादी जानते हैं कि परम पवित्र वेदों से बढ़कर कोई भी ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान से पूर्ण है। पर समय के हेर फेर से इनका प्रचार इतना शिथिल होगया का कुछ ठिकाना नहीं। एक तो यह विषय ही इतना गंभीर है छहों अंग और छहों दर्शन इत्यादि विषयों में गति हुए विना इनमें प्रवे सहज में कोई नहीं पा सक्ता और दूसरे पठन पाठन की प्रणाली सर्वत्र प्रसार नहीं होने से अत्यन्त कठिन जान बहुत थोड़े लोग इध रुचि करते हैं, इत्यादि कारणों को सोच विचार इन पवित्र ग्रंथों की सेवा करने को यह विचार सूझा कि यदि इनको छंदोबद्ध अनुवाद सहित छपावें तो आशा है कि लोग राग से बोलते हुए मंत्रार्थों को समझ सकेंगे और ऊपर वेदमंत्र रहने से मंत्र भी उपस्थित जावेंगे। इस आशय से पहिले श्री सामवेद का आरम्भ कराया ५॥) रुपयों में यह ग्रंथ पूर्ण होगा और जो १५०) रु० वेद-प्रचार प्रदान करेंगे उनका नाम उसी अध्याय के टाइटल पेज पर प्र शक के स्थान पर दिया जावेगा। जिससे यहां सुयश और व उनका अखण्ड पुण्य बढ़ेगा।

श्रीमानों का हितचिन्तक—

शिवदत्त-काव्यतीर्थ,

सुदामापोल, अजमेर